ISSN 0976 - 4569

# पशुधन प्रकाश

## चतुर्थ अंक

राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)

भाकृअनुप
ICAR

NBAGR
रा.प.आ.सं. ब्यूरो

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

# पशुधन प्रकाश

## चतुर्थ अंक

राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
करनाल– 132 001 (हरियाणा) भारत

**पशुधन प्रकाश**

चतुर्थ संस्करण

**ISSN 0976-4569**

| | | |
|---|---|---|
| **संरक्षक एवं प्रकाशक** | – | डा. बलविन्दर कुमार जोशी |
| **मुख्य सम्पादक** | – | डा. प्रमोद कुमार सिंह |
| **सम्पादक मंडल** | – | डा. अनिल कुमार मिश्र |
| | | डा. रेखा शर्मा |
| | | डा. साकेत कुमार निरंजन |
| | | डा. विकास वोहरा |
| | | श्री सतपाल |

© राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि मंत्रालय, भारत सरकार,
कृषि भवन, नई दिल्ली

अंक–4 (वर्ष–2013)

**मुद्रक**
इन्टैक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
343, पहली मंजिल, मुगल कॅनाल,
करनाल – 132 001 (हरियाणा)
फोन नं. 0184-4043541, 3292951
ई–मेल: jobs.ipp@gmail.com

# विषय–सूची


1. छत्तीसगढ़ राज्य का गौरव– "कोसली" गोवंश 1
मोहन सिंह, के मुखर्जी एवं केशर परवीन

2. टोडा भैंस– नीलगिरी पहाड़ों की विशिष्ट नस्ल 3
साकेत कुमार निरंजन, पी काथीरवन, संजीव सिंह एवं रणजीत सिंह कटारिया

3. हिमाचल प्रदेश की अमूल्य धरोहर– चामूर्थी घोड़ा 7
प्रदीप कुमार डोगरा, संजीत कटोच, यशपाल ठाकुर, वरूण संख्यान एवं राकेश ठाकुर

4. संकर प्रजनन का उत्कृष्ट परिणाम–वृन्दावनी गाय 11
ज्ञानेन्द्र कुमार गौड़, भारत भूषण, मन्जुनाथ पटेल एवं मुकेश सिंह

5. देश में अग्रणी राजस्थानी भेड़ सम्पदा 17
अरूण कुमार तोमर, आशीष चोपड़ा, अनिल कुमार मिश्र एवं एस एम के नकवी

6. पशुओं का उचित रख–रखाव 23
देवव्रत सिंह

7. भारतीय पशुधन की प्रमुख समस्याः बाँझपन के कारण एवं उनका निवारण 29
नवनीत कौर, दीपक शर्मा, एस पी एस सोमवंशी एवं डी के सदाना

8. पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान में होने वाली त्रुटियाँ एवं उनका निवारण 33
संजय कुमार मिश्र एवं सर्वजीत यादव

9. गाय–भैंस से प्रति वर्ष एक बच्चा प्राप्त करने हेतु अत्यन्त उपयोगी जानकारी 36
संजय कुमार मिश्र

10. पशुओं में बांझपन की समस्या 39
मोहन सिंह ठाकुर

11. जम्मू के परजीवी जनित रोग 42
राजेश कटोच, अनीश यादव, राजेश गोदरा एवं साहिल कुमार

12. हिमाचल प्रदेश के पशुओं में पाई जाने वाली उभरती बीमारियां: रोकथाम व इलाज 45
सुभाष वर्मा, मनदीप शर्मा, प्रसेनजीत धर, राजेश चहोता, शैलजा कटोच एवं रमेश चन्द कटोच

13. गुनिया फाउल के प्रमुख रोग एवं आर्थिक ब्यौरा 50
बृजेश सिंह, एस के सिंह एवं अनिल कुमार

14. खुरपका एवं मुंहपका टीकाः पशु संरक्षण में सहायक 55
'गोपाल रामदासजी गोवने, एम शंकर एवं ए के शर्मा

15. पशु चिकित्सा हेतु घरेलू औषधियां और उनका प्रयोग 57
सत्येन्द्र पाल सिंह एवं संजीव सिंह

16. मांसः एक पोषक एवं बहुमुखी आहार 60
रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं मधुसूदन टांटिया

17. भारत की मांस उत्पादन करने वाली भेड़ की नस्लें तथा मांसाहारी भोजन का महत्व 65
संजीव सिंह एवं इन्द्रजीत गाँगुली

18. सम्पूर्ण आहार वट्टिका खिलाने के लाभ 68
ओम हरि चतुर्वेदी, आर्तबन्धु साहू, सुरेन्द्र कुमार संख्यान, रणधीर सिंह भट्ट एवं मनोज कुमार त्रिपाठी

19. कुक्कुट आहार में विषयुक्त कवकों का प्रभाव एवं रोकथाम 71
राम सिंह, असीत बरन मण्डल एवं दिव्या

20. भारत में चारे की आवश्यकता एवं उपलब्धता 73
चन्द्र नाथ मिश्र, राज पाल मीना, सतीश कुमार एवं विकास गुप्ता

21. कृषि वानिकीः चारा उत्पादन के लिए आर्थिक रूप से सक्षम तकनीक 75
राजपाल मीना, चन्द्र नाथ मिश्र, सतीश कुमार एवं विकास गुप्ता

22. अव्यवस्थित पशु प्रबन्धन एवं पर्यावरणीय प्रभाव 77
सतीश कुमार, चन्द्र नाथ मिश्र, राज पाल मीना एवं विकास गुप्ता

23. विभिन्न भाषाओं के लोक साहित्य में पशुधन का महत्व 80
सतपाल, पी के विज एवं बी के जोशी

24. पशुधन नस्ल पंजीकरणः राष्ट्रीय सम्पदा की सुरक्षा 84
पी के विज, एस के निरंजन, एम एस टांटिया एवं बी के जोशी

# छत्तीसगढ़ राज्य का गौरव– ”कोसली“ गोवंश

***मोहन सिंह, के मुखर्जी एवं केशर परवीन***
*पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय*
*छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय, अंजोरा दुर्ग (छत्तीसगढ़)*

"कोसली" नस्ल की गायें भारत में छत्तीसगढ़ राज्य में पाई जाती हैं। इसका प्रमुख निवास स्थान छत्तीसगढ़ राज्य के मैदानी जिले जैसे रायपुर, राजनांदगांव, दुर्ग एवं बिलासपुर हैं। प्राचीन काल में छत्तीसगढ़ प्रदेश को "कौसल" के नाम से जाना जाता था। "कौसल" भगवान राम का ननिहाल था। अतः इस राज्य का अत्याधिक महत्त्व भी है। "कौसल" क्षेत्र में पाए जाने की वजह से ही इन गायों का नाम "कोसली" पड़ा। कोसली नस्ल गायों को प्रायः यादव एवं राऊत समुदाय के किसानों द्वारा पालन किया जाता है। हाल ही में राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा इस नस्ल का पंजीयन (पंजीकरण क्रमांकः INDIA_CATTLE_2600_KOSALI_03036) किया गया है।

## उपयोगिता

सामान्यतः, यह नस्ल खेती एवं धान की खेती से खरपतवार को निकालने के उपयोग में लायी जाती है। इस पद्धति को स्थानीय भाषा में "बियासी" कहा जाता है। इसके अलावा गांव के लोग इसके गोबर को ईधंन एवं खेतों में उर्वरक के रूप में उपयोग में लाते हैं।

## शारीरिक लक्षण

कोसली नस्ल की गायें प्रायः छोटे आकार की होती हैं। कोसली नस्ल में सामान्यतः दो वर्ण के पशु पाए जाते हैं। इनमें सबसे अधिक वर्ण हल्का लाल है, जो कि 60 से 65% गायों में पाया जाता है। हल्के सफेद वर्ण के पशुओं की संख्या 30 से 35% है। लगभग 90% पशुओं के थूथन का रंग काला होता है, जबकि 10% पशुओं में भूरे रंग का थूथन पाया जाता है। जिन पशुओं के थूथन का रंग काला होता है, उनके पूंछ के बाल भी काले रंग के होते हैं। वैसे ही भूरे थूथन वाले जानवरों के पूंछ के बाल भूरे होते हैं। एक वयस्क कोसली गाय का वजन 160–200 कि.ग्रा. एवं वयस्क साँड का वजन 200–300 कि.ग्रा. तक हो सकता है। एक वयस्क कोसली नस्ल की गाय की ऊँचाई 80–118 से.मी. एवं वयस्क साँड़ की ऊँचाई 120–140 से.मी. पाई गई है। कोसली नस्ल की गायों के सींग छोटे आकार के होते हैं। ये प्रायः सीधे एवं ऊपर की ओर झुके हुए होते हैं। कान छोटे एवं क्षैतिज तथा माथा समतल, सपाट एवं सीधे होते हैं। कोसली नस्ल के गायों के थन छोटे व कटोरेनुमा होते हैं। इनके चूचक (टीट्स), कीप (फनल) के आकार के होते हैं। दुग्ध शिरा (वेन) कम विकसित होती है।

## रख–रखाव

स्थानीय लोग कोसली गायों को अधिकतम् महीनों में खासकर रबी फसल के समय बाहर खुले में चरने के लिए छोड़ देते हैं। लेकिन खरीफ में चरवाहों द्वारा सुबह में सभी घरों में जानवरों को इकठ्टा करके गाँव के बाहर "गोठन" में देखभाल करने के लिए भेज दिया जाता है। गोठन में एक साथ 800–1000 तक जानवर मिलते हैं। शाम के वक्त सभी जानवर अपने घरों में वापस लौट जाते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य को भारत के सबसे अधिक धान उत्पादन क्षमता वाले राज्य के रूप में जाना जाता है, इसलिए इसे "धान का कटोरा" भी कहा जाता है। यहाँ के स्थानीय लोग अपने जानवरों को प्रायः धान का पैरा खिलाते हैं।

## प्रजनन विशेषताएँ

कोसली नस्ल की गायों के प्रथम उन्माद (इस्ट्रस) की आयु लगभग 3½–4 साल होती है एवं 4½–5 वर्ष की आयु में इनका प्रथम ब्याँत होती है। इस नस्ल के गायों की पूर्व गर्भाधान अवधि 6–7 माह एवं ब्यात अंतराल 1½–2 साल तक होती है। जन्म के समय इनके बछड़ों का वजन बहुत कम पाया गया है। मादा बछिया का वजन 12–15 कि.ग्रा. एवं नर बछड़े का वजन 13–15 कि.ग्रा. होता है। कोसली नस्ल की गायों में प्रजनन संबंधी समस्याएँ जैसे गर्भपात (एबॉरशन), निश्चल जन्म (स्टिल बर्थ), खेड़ी अवरोधन (रेटेन्शन आफ प्लासन्टा) के बहुत कम प्रसंग पाये जाते हैं। परंतु एनएस्ट्रस की समस्या बहुत अधिक होती है, जिसका प्रमुख कारण भोजन में पोषण तत्वों की कमी है।

## उत्पादन क्षमता

कोसली नस्ल की गायों की दुग्ध उत्पादन क्षमता बहुत कम है। अधिकतम घरों में दूध को प्रायः बछड़ों को पिला दिया जाता है। एक कोसली गाय की प्रतिदिन दुग्ध उत्पाद क्षमता लगभग ½–1 लीटर तक होती है। परंतु कुछ जानवरों में अधिकतम उत्पादन एक लीटर से अधिक पाया गया है। इन गायों की दुग्ध उत्पादन अवधि 6–7 माह तक होती है। कोसली नस्ल की गायों के दूध में वसा की मात्रा 3.5 से 4.0% तक होती है।

## विशेष योग्यतायें

कोसली नस्ल में उत्तम रोग प्रतिरोधक, उच्च तापमान (47 °C) को सहने की शक्ति एवं निम्न पोषण क्षमता वाले सूखा चारा (धान का पैरा) खाकर जीवनयापन करने की विशेष योग्यतायें होती हैं।

☆☆☆☆☆

# टोडा भैंस– नीलगिरी पहाड़ों की विशिष्ट नस्ल

*साकेत कुमार निरंजन, पी काथीरवन, संजीव सिंह एवं रणजीत सिंह कटारिया*
*राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)*

भैंसों को भारत में एक अग्रणी डेयरी पशु के रूप में देखा जाता है। हालाँकि दूध भैंसों से मिलने वाला एक प्रमुख उत्पाद है, परन्तु इनका माँस उत्पादन व भार–वाहन में भी विशेष योगदान है। तमिलनाडू की नीलगिरी पहाड़ों में पाई जाने वाली टोडा भैंसों की गिनती तेरह पंजीकृत भैंसों की नस्लों में होती है। इनका नाम नीलगिरी में रहने वाले टोडा जनजाति के नाम पर है, जोकि इन भैंसों को पालते हैं। टोडा जनजाति के लोग लगभग 800 वर्षों से भी पहले से नीलगिरी के पहाड़ों में रह रहे हैं और इनका जीवनयापन मुख्यतः इन्हीं भैसों के इर्द–गिर्द ही केन्द्रित रहता है। साहित्य में इन भैंसो का सम्बन्ध टोडा जनजाति से सन् 1603 से भी पहले से वर्णित है। पहाड़ों में रहने वाली इस अकेली भैंस नस्ल की शारीरिक रचना बाकी सभी नदीय भैंसों से काफी भिन्न है। ये भैंसे नीलगिरी पहाड़ों के वातावरण में पूर्णतयः अनुकूलित हैं तथा खुले में विषम तापमान को पूरी तरह से सहन करने में सक्षम हैं। इनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता मध्यम स्तर की है, जोकि 2–6 लीटर प्रतिदिन है। व्यापक प्रबन्धन प्रणाली में पाली जाने वाली इन भैंसों को पहले दलदलीय भैंसों के रूप में पहचाना गया जिनको बाद में गुणसूत्रीय आधार पर नदीय भैंसों के रूप में वर्गीकृत किया गया।

## वितरण

टोडा भैंसों का भौगोलिक वितरण तमिलनाडू के नीलगिरी जिले के चारो तालुकों में नीलगिरी के पहाड़ी क्षेत्र में है। वैसे तो मुख्यतः टोडा जनजाति के लोग ही इसको पालते हैं, परन्तु दूसरी जनजातियाँ जैसे कि बाडागा एवं कोटा भी इनको कुछ संख्या में रखते हैं। टोडा जनजाति के लोग इस भैंसों के साथ छोटी–छोटी बस्तियों, जिन्हें कि "मुण्ड" कहा जाता है, में रहते हैं। ये बस्तियाँ पश्चिमी तथा दक्षिण–पश्चिमी दिशाओं के नीलगिरी चारागाहों में मुख्य रूप से समुद्रतल से 2000 मीटर व अधिक ऊँचाई पर फैली हुई हैं। इस क्षेत्र में औसतन 116 से. मी. वर्षा प्रतिवर्ष मुख्यतः जून से अक्तूबर माह के दौरान होती है। इस कारण ही इस क्षेत्र में पूरे साल चारागाहों में हरी घास उपलब्ध रहती है, जिस पर यह भैंसें मुख्यतः निर्भर रहती हैं।

टोडा चरवाहे कई सदियों से इन भैंसों के साथ नीलगिरी की पहाड़ियों में विचरण कर रहे हैं। टोडा जनजाति का इन भैंसों से विशेष सम्बन्ध है क्योंकि वे इसको ईश्वरीय वरदान मानते हैं। इन भैंसों को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। पहली वो भैंसें जो जंगल में रहती हैं। इनके दूध का दोहन केवल जंगल में रह रहे टोडा पुजारी लोग धार्मिक अनुष्ठानों हेतु करते

*नर टोडा पशु*

*मादा टोडा पशु*

हैं। इन भैंसों को "थी–इर" कहा जाता है। दूसरी तरह की भैंसे जिन्हें 'पोस्थ–इर' कहा जाता है, टोडा बस्तियों में रहती हैं व इनका भी दूध केवल मन्दिर के पुजारी धार्मिक अनुष्ठानों के लिए ही कर सकते हैं। तीसरी तरह की भैंसे 'फिथ–इर' के दूध का उपयोंग घरेलू खपत के लिए होता है।

## टोडा पशुधन संख्या

टोडा भैंसों का औसतन झुण्ड आकार 34 भैंसें (2 से 123 भैंस) प्रतिझुण्ड दर्ज किया गया है। सन् 1994 में टोडा भैंसों की कुलसंख्या 3313 अभिलिखित है, जिनमें 1809 वयस्क मादा, 700 वयस्क नर, 584 अवयस्क मादा व 850 पड्डे शामिल हैं। सन् 2005 में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार, 70 झुण्डों में टोडा भैंसों की संख्या केवल 1476 पाई गई। अस्तु, ये भैंस नस्ल संरक्षण के सन्दर्भ में खतरे में है।

## पशु व्यवहार

पूर्ण रूप से पालतू न होने के कारण इन भैंसों का व्यवहार आक्रामक होता है और इन्हें केवल इनका पशु मालिक ही सम्भाल सकता है। इस तरह का व्यवहार इन्हें जंगल में जंगली जानवरों से बचने में मदद करता है। एक झुण्ड की भैंसे दूसरे झुण्ड के साथ प्रायः नहीं मिलती।

## आवास

इन भैंसों को प्रायः खुले में रखा जाता है और ये चारागाहों पर बिना किसी अतिरिक्त खुराक के ठण्डे व पठारी क्षेत्रों में आसानी से रह सकती हैं। छोटे पड्डों को रात में ठण्ड से बचाने के लिए विशेष झोपड़ी बनाकर रखा जाता है। वयस्क भैंसों को खुले बाड़े में रात के समय रखा जाता है। इन बाड़ों से गोबर साल में एक बार निकाला ही जाता है।

## पोषण

भैंसों का पोषण मुख्यतः चराई पर निर्भर रहता है तथा इन्हें किसी भी प्रकार का दाना/रातिब नहीं दिया जाता है। केवल वर्ष में दो बार एक विशेष समारोह में केवल मादाओं को नमक दिया जाता है। दूध निकालने के उपरान्त भैंसों को तुरन्त चरने के लिए जंगल छोड़ दिया जाता है, जबकि छोटे बछड़े व बछड़ियों को आसपास ही चरने दिया जाता है।

*जंगल में विचरित टोडा भैंसों का एक झुण्ड*

*नवजात टोडा पशु*

## बाह्य शारीरिक संरचना

जन्म के समय ज्यादातर बछड़ों का रंग हल्के पीले रंग या हल्के धूसर रंग का होता है, जोकि शारीरिक वृद्धि के साथ भूरे राख के रंग में परिवर्तित हो जाता है। प्रारम्भ में बछड़ों के शरीर पर लम्बे बाल मौजूद होते हैं, जो उम्र के साथ छोटे व विरल होते चले जाते हैं। चेहरे, गर्दन व अग्र अर्द्धशरीर पर बाल अधिकतम् संख्या में होते हैं। नर भैंसों में बालों का रंग गहरा होता है और चमड़ी ज्यादातर हल्के धूसर रंग में होती है। सिर का आकार काफी बड़ा व भारी भरकम तथा शरीर के समतल होता है। माथा चौड़ा होता है। सिर के ऊपर स्लेटी रंग के काफी बड़े सींग होते हैं, जोकि चौड़ाई में अर्द्धवृत्ताकार रूप में बाहर तथा ऊपर को फैले होते हैं। टोडा भैंसें मध्यम शारीरिक संरचना वाली होती हैं। टाँगे छोटी व मजबूत होती हैं। अयन वृत्ताकार तथा मध्यम रूप से उन्नत होता है। थन बेलनाकार सिरे पर गोलाकार होते हैं। दुग्ध नस बहुत ज्यादा उन्नत नहीं होती। गर्दन के पास पशु की छाती पर हल्के भूरे रंग के दो गोलाकार निशान होते हैं।

## दुग्ध उत्पादन

टोडा भैंसों में दूध उत्पादन की क्षमता औसतन 2.5 कि.ग्रा. प्रतिदिन दर्ज की गई है, जो कि सिर्फ घास पर निर्भर रहते हुए मध्यम दर्जे की है। अधिकतम दुग्ध उत्पादन 6.6 कि.ग्रा. प्रतिदिन दर्ज किया गया है। दूसरे ब्यॉंत तक दूध उत्पादन में वृद्धि होती है, तत्पश्चात् उत्तरवर्ती ब्यातों में कम होता जाता है। दुग्ध काल औसतन 198 दिन, 603 कि.ग्रा. दूध के साथ मापा गया है, जोकि दूसरी भैंसीय नस्लों की तुलना में काफी कम है। दूध में कुल औसत वसा की मात्रा 8.28% (4.8 से 14.0% के बीच) होती है जोकि भदावरी भैंसों के समतुल्य व बहुत सारी अन्य नस्लों से अधिक है। प्रोटीन व कुल ठोस की औसतन मात्रा 4.2 व 16% आंकी गई है।

पिछली शताब्दी तक टोडा जनजाति के लोगों का प्रमुख पारम्परिक व्यवसाय डेरी उद्योग ही रहा है, जोकि धीरे धीरे समय के साथ बदलाव की तरफ है। ज्यादातर भैंसों से दिन में दो बार दुग्ध दोहन किया जाता है, जिसमें दूध थनों में उतारने के लिए भैंस के बच्चे की मदद ली जाती है। दूध सूख जाने के बाद कुछ भैंसों को दिन के लिए जंगल में छोड़ दिया जाता है। नर बछड़ों को 6 से 12 महीने के बीच माँस के लिए ग्रीष्म ऋतु के आगमन से पहले बेच दिया जाता है।

## प्रजनन

सामान्यतयः टोडा झुण्डों में प्रजनन के लिए नर को नहीं रखा जाता है। नर बछड़ों को एक साल तक की उम्र में बेच दिया जाता है अथवा जंगल में प्राकृतिक सहवास के लिए छोड़ दिया जाता है। प्रजनन के समय ये जंगली भैंसें कुछ दिन के लिए मादाओं के झुण्ड के साथ रहते हैं। इस प्रक्षेत्र में टोडा भैंसों का दूध बढ़ाने के लिए मुर्रा नस्ल को भी प्रजनन हेतु उपयोग किया गया, परन्तु संकर पशु ठण्डे वातावरण में अपने आपको ढ़ालने में नाकाम रहे हैं।

टोडा भैंसों में प्रथम ब्यॉंत 36 से 48 महीने के दर्ज की गई है। इन भैंसों में मई से जून तथा सितम्बर से अक्तूबर, एक वर्ष में दो ब्यॉंत काल देखे गए हैं। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार, जुलाई से अक्तूबर महीने को प्रमुख ब्यातकाल माना गया है जिसका मुख्य कारण इसी काल में प्रचुर मात्रा में हरी घास का उपलब्ध होना हो सकता है। ब्यॉंत अन्तराल 14 से 18 महीने होता है। इन भैंसों की अच्छी पुनुरुत्पत्ति को देखते हुए, इनकी उत्पादन क्षमता काफी अधिक होती है। पूरे जीवन काल की उत्पादन सामर्थ्य काफी अधिक होती है।

## बीमारियाँ

अस्वास्थकर परिस्थितियों में रहते हुए भी इन भैंसों में थनैला रोग की घटनाएं कम दर्ज की गई हैं, जोकि इनकी कम दूध देने की क्षमता के कारण हो सकती है। वैसे तो इन भैंसों में कुछ एक संक्रामक रोग, जैसे कि लंगडिया तथा खुरपका मुंहपका का प्रकोप भी देखा गया है, परन्तु परजीवी रोग इन भैंसों में एक बहुत बड़ी समस्या हैं। हेलमिन्थ कृमियों की वजह से टोडा बछड़ों/बछड़ियों में मृत्यु दर काफी ज्यादा देखी गई है।

## उपयोगिता

टोडा भैंसों तथा डेयरी की उपयोगिता टोडा जनजाति की लोकगाथाओं एवं प्रार्थनाओं में बताई गई है। ये भैसें सिर्फ चराई पर निर्भर रहती हैं और इन्हें कोई अतिरिक्त रातिब इत्यादि नहीं दिया जाता है। टोडा लोगों की इन भैंसों से अधिकतर आय दूध बेचकर होती है। थोड़ी बहुत मात्रा में घी एवं मक्खन इत्यादि भी बेचा जाता है, जिन्हे ये दूसरी जनजातियों बडागा, कोटा, इरुला इत्यादि लोगों को बेचते है और बदले में कपड़ा, अनाज इत्यादि खरीदते हैं। दूध के अतिरिक्त इन्हें माँस के लिए भी उपयोग में लाया जाता हैं, जिसमें अधिकतर नर पड्डे ही होते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों के लिए कभी कभी इनकी बलि भी दी जाती है। लगभग सभी नर पड्डों को 9 से 12 महीने की उम्र में मांस हेतु बेच दिया जाता है। इन सब के अतिरिक्त बहुत बड़े झुण्डों से प्राप्त गोबर को वर्ष में एक बार बाड़े से निकाल कर एवं सुखाकर बेचा जाता है, जिससे काफी अच्छी आमदनी हो जाती है।

## आनुवंशिक गुण निर्धारण

माइक्रोसेटेलाइट तथा माइटोकाण्ड्रिया की डी–लूप श्रृंखला के आधार पर दूसरी भैंसों की तुलना में टोडा भैंसों में उपस्थित विविधता का अध्ययन किया गया है। 25 माइक्रोसेटेलाइट चिन्हकों के अध्ययन से कुल 105 एलील पाए गए, जोकि औसतन 4.2 एलील/लोकस थे। टोडा भैंसों में मध्यम दर्जे की हेटोरोजाइगोसिटी पायी गई जोकि औसत से 0.048 कम है। सबसे रोचक तथ्य यह है कि टोडा भैंसों की संख्या कम तथा छोटे/सीमित भौगोलिक क्षेत्र में होते हुए भी इनमें अन्तः प्रजनन जो कि एफ.आई.एस. वेल्यू द्वारा निकाली गई, कम स्तर पर थी। जिसका कारण प्रजनन में जंगली भैंसों का योगदान अधिक होना हो सकता है। इस बात की पुष्टि, इस नस्ल में जेनेटिक बोटलनेक की अनुपस्थिति से भी हुई। चार नदीय भैंसों, टोडा, साउथ कनारा, मराठवाड़ी तथा मुर्राह के माइक्रोसेटेलाइट विश्लेषण द्वारा साउथ कनारा तथा टोडा भैंसों को काफी नजदीक पाया गया। माइटोकाण्ड्रिया डी.एन.ए क्रम के विश्लेषण से इन चारों नस्लों में क्रम विकास सम्बन्ध के आधार पर भी साउथ कनारा और टोडा भैंसों में हेप्लोटाइप सहभाजन अधिकतम था, जिसका कारण इनका भूगोलीय स्तर पर नजदीक होना हो सकता है।

## उपसंहार

टोडा भैंसें एक महत्वपूर्ण डेयरी पशु है, जिसका सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक रूप से टोडा जनजाति के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु इनकी घटती हुई संख्या एक चिन्ता का विषय है। छोटे व नवजात पशुओं में अत्यधिक मृत्यु दर, कम होते चारागाहों की संख्या, जंगली जानवरों द्वारा इनका शिकार कुछ एक ऐसे कारण हैं जिनकी तरफ ध्यान देना अति आवश्यक है। टोडा समुदाय के लोगों में जीवन शैली के बदलाव की वजह से पशुपालन को छोड़कर दूसरे किसी अन्य कार्यों की तरफ बढ़ता रुझान भी इन भैंसो के उत्तरजीविता के लिए खतरा है। इनके संरक्षण के लिए हॉलाकि लगभग 25 टोडा बस्तियों को शामिल करके एक "पंच पन्डावर टोडा भैंस प्रजनक संस्था" की स्थापना की गई है, जोकि इनके पालन के लिए कई तरह से प्रयासरत है। तमिलनाडू राज्य के पशुपालन विभाग को और भी आवश्यक कदम उठाकर तथा साथ ही इसके संरक्षण के लिए टोडा जनजाति के लोगों को जागृत करने की आवश्यकता है, जिससे कि इस अमूल्य भैंस को बचाया जा सके।

☆☆☆☆☆

# हिमाचल प्रदेश की अमूल्य धरोहर– चामूर्थी घोड़ा

***प्रदीप कुमार डोगरा, संजीत कटोच, यशपाल ठाकुर, वरूण संख्यान एवं राकेश ठाकुर***
*पशु प्रजनन एवं आनुवंशिकी विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय,*
*हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर (हिमाचल प्रदेश)*

भारतवर्ष की कुल पशु जनसंख्या का लगभग एक प्रतिशत हिस्सा घोड़ा प्रजाति के पशुओं से बनता है। स्वतन्त्र भारत के पर्वतीय राज्यों में यातायात के साधनों में बहुत उन्नति हुई हैं, फिर भी ग्रामीण ऑचल में आज भी यातायात बहुत हद तक घोड़ा प्रजाति के पशुओं द्वारा ही संचालित किया जाता है। हमारे देश में घोड़ों की कुल छः नस्लें पाई जाती हैं, उनमें से ही एक चामूर्थी (स्पिती) घोड़ा है, जोकि हिमाचल प्रदेश के लिए प्रकृति की एक अमूल्य धरोहर का स्वरूप है। प्रदेश के पर्वतीय ऊँचे–नीचे ढलानदार रास्तों में जहाँ यातायात का और कोई अन्य साधन काम नहीं आता है, वहाँ यह घोड़े हर प्रकार के कार्यो में उपयोगी सिद्ध होते हैं, जैसे कि घरेलू सामान लाना ले जाना, नकदी फसलों (फल एवं सब्जियों) को खेतों से सड़क तक लाना, पर्यटकों के लिए घुड़सवारी एवं घुड़दौड़ और सबसे ऊपर स्पिती घाटी के किसानों के लिए जीविका का एक साधन बनकर उभरना। यह माना जाता है कि चामूर्थी घोड़ों की उत्पत्ति तिब्बत के चामूर्थी क्षेत्र से हुई है। वर्तमान में इन घोड़ों का प्रजनन क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के स्पिती उपमण्डल की पिन घाटी में केन्द्रित है। तथापि यह घोड़े प्रदेश के लाहौल स्पिती अथवा किन्नौर जिलों में भी पाए जाते हैं। इसके अलावा इस नस्ल के कुछ घोड़े प्रदेश के कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों (समुद्र तल से 500 फीट) जैसे कि कॉगड़ा, कुल्लू एवं मण्डी जिलों में भी पाए जाते हैं। पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय पालमपुर के पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग में वर्ष 2001 से 2003 तक राष्ट्रीय पशु आनुवंशिकी संसाधन ब्यूरो, करनाल के सौजन्य से चामूर्थी घोड़ों के चरित्रीकरण एवं संरक्षण के लिए एक परियोजना कार्यान्वित की गई। परियोजना सर्वेक्षण के अनुसार इस नस्ल के घोड़ों की कुल जनसंख्या लगभग 4000 ऑकी गई है, इसलिए इस नस्ल के संरक्षण पर बल देने का सुझाव दिया गया है।

इन घोड़ों की यह विशेषता है कि यह अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों (समुद्र तल से 10 से 15 हजार फुट) में भली भांति ढ़ल जाते हैं और अच्छा कार्य करते हैं। यह क्षेत्र शीत मरूस्थल के नाम से जाना जाता है, जोकि वर्ष में लगभग 5 से 6 महीने बर्फ से ढका रहता है। सर्दियों में यहाँ का तापमान शून्य से 20 से 30$^{o}$ से.ग्रे. तक नीचे गिर जाता है। इन दिनों चारों तरफ बर्फ की एक सफेद चादर ही नजर आती है तथा चारे की उपलब्धता बहुत कम रह जाती है। अधिक ऊँचाई होने के कारण वहाँ पर आक्सीजन की मात्रा भी कम ही होती है। अतः इन सीमित संसाधनों में भी इस नस्ल के घोड़े भली भाँति ढ़ल जाते हैं और अच्छा कार्य करते हैं। तत्पश्चात् जून से अक्तूबर माह तक हल्का गर्म मौसम होता है तब इन्हें चारागाहों में चरने छोड़ा जाता है। इन्हीं दिनों में ही प्रजनन एवं प्रसूति का कार्य भी सम्पन्न होता है। जैसे ही बर्फ गिरना आरम्भ होती है तो इन्हें दोबारा चारागाहों से वापस घुड़शालाओं में लाया जाता है।

## प्रचलित प्रजनन पद्धति

प्रदेश के स्पिती उपमण्डल के अर्न्तगत पिन घाटी में चामूर्थी घोड़ों का प्रजनन यहाँ से किसानों के लिए जीविका का एक स्रोत है। शगनम एवं कुंगरी पंचायत के लगभग 15 गाँवों के किसान चामूर्थी घोड़ों का प्रजनन वैज्ञानिक तरीके से कर रहे हैं और प्रति वर्ष यहाँ से उत्तम नस्ल के चामूर्थी घोड़े विक्रय हेतु काजा, रामपुर एवं लेह–लद्दाख तक भेजे जाते हैं। यहाँ के किसानों की जीविका इसी व्यवसाय पर निर्भर है। इस क्षेत्र में प्रजनन हेतु नर घोड़ों की चयन प्रक्रिया क्षेत्र के अनुभवी एवं बुजुर्ग घोड़ा पालकों की एक समिति के द्वारा वैज्ञानिक तरीके से कार्यान्वित की जाती है। क्षेत्र के सभी व्यस्क नर घोड़ों को इस समिति के समक्ष चयन हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इन सभी घोड़ों में से कुछ एक चुनिंदा घोड़ों को ही उसकी कद–काठी, नस्ल की अनुरूपता, चाल, रंग एवं अन्य मापदण्डों का पूर्ण आंकलन करने के उपरान्त चयनित किया जाता है। अन्य व्यस्क नर घोड़ों का बधियाकरण कर दिया जाता है। तदोपरान्त इन घोड़ों का प्रजनन हेतु सभी घोड़ा पालक उपयोग करते हैं। इस कार्य के लिए इन नर घोड़ों को मादा घोड़ियों के साथ प्राकृतिक समागम हेतु चारागाहों में छोड़ा जाता है। समिति इस कार्य के लिए कुछ शुल्क भी निर्धारित

करती है, जोकि उस घोड़ा पालक हो मिलता है, जिसका नर घोड़ा चयनित होता है और वह इस का उपयोग उन नर घोड़े के रखरखाव पर करता है। इस प्रक्रिया से किसानों में प्रतियोगिता की भावना बढ़ती है क्योंकि जिस किसान का नर घोड़ा इस कार्य के लिए चयनित होता है, उसकी इज्जत क्षेत्र में बढ़ जाती है। हर तीन साल के बाद नए नर घोंड़ों का प्रजनन हेतु पुनः चुनाव किया जाता है तथा पुराने चयनित व अन्य व्यस्क नर घोड़ों का बधियाकरण कर दिया जाता है ताकि अन्त प्रजनन पर रोक लग सके। किसानों के इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप ही इस नस्ल के घोड़ों की शुद्धता अभी तक बरकरार है अन्यथा ये कब के लुप्त होने के कगार पर पहुंच गए होते।

### तालिका 1: चामूर्थी घोड़ों का शारीरिक भार (किलोग्राम)

| उम्र समूह | नर | | मादा | |
|---|---|---|---|---|
| | औसत | सीमा | औसत | सीमा |
| जन्म | 31.85±1.29 (27) | 28–37 | 29.93±2.92 (13) | 24–35 |
| 12 महीने | 97.61±2.97 (60) | 87–119 | 87.17±3.93 (6) | 80–107 |
| 24 महीने | 151.37±3.02 (52) | 137–175 | 146.48±3.89 (39) | 125–167 |
| 1 से 3 वर्ष | 185.05±5.32 (140) | 130–212 | 178.59±2.75 (93) | 115–201 |
| 3 वर्ष से उपर | 227.84±3.20 (258) | 197–258 | 203.77±3.73 (433) | 172–238 |

### तालिका 2: चामूर्थी घोड़ों का शारीरिक परिमाप (सैंटी मीटर)

| परिमाप | उम्र 1 वर्ष से कम | | उम्र 1 से 3 वर्ष | | उम्र 3 वर्ष से ऊपर | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | नर (118) | मादा (73) | नर (140) | मादा (93) | नर (258) | मादा (433) |
| शारीरिक लम्बाई | 95.56 | 95.50 | 117.76 | 113.91 | 129.85 | 122.28 |
| | ±2.41 | ±2.78 | ±1.61 | ±1.13 | ±0.85 | ±0.94 |
| छाती की परिधि | 99.76 | 98.46 | 138.64 | 135.41 | 143.12 | 140.56 |
| | ±2.73 | ±3.27 | ±1.43 | ±1.36 | ±0.60 | ±0.61 |
| शारीरिक ऊँचाई | 95.40 | 94.49 | 124.87 | 123.42 | 132.14 | 131.19 |
| | ±2.36 | ±2.74 | ±1.26 | ±1.03 | ±0.64 | ±0.67 |
| कानों की लम्बाई | 10.05 | 11.07 | 12.87 | 12.94 | 15.33 | 15.56 |
| | ±0.30 | ±0.33 | ±0.36 | ±0.46 | ±0.34 | ±0.17 |
| मुँह की लम्बाई | 32.41 | 32.69 | 37.53 | 37.48 | 50.37 | 49.03 |
| | ±0.39 | ±0.83 | ±0.74 | ±0.93 | ±0.84 | ±0.91 |
| मुँह की चौड़ाई | 13.73 | 14.21 | 16.78 | 17.14 | 21.61 | 20.73 |
| | ±0.26 | ±0.70 | ±.80 | ±0.46 | ±0.17 | ±0.43 |
| गर्दन के बालों | 21.52 | 21.06 | 24.11 | 27.78 | 29.22 | 28.97 |
| की लम्बाई | ±0.31 | ±0.92 | ±0.68 | ±0.19 | ±0.11 | ±0.13 |
| पूँछ की लम्बाई | 29.34 | 35.11 | 49.83 | 50.20 | 60.26 | 55.55 |
| | ±0.70 | ±0.25 | ±0.35 | ±0.23 | ±0.89 | ±0.29 |

### तालिका 3: चामूर्थी घोड़ों के प्रजनन ऑकड़े

| प्रजनन आंकड़ा | औसत | सीमा |
|---|---|---|
| प्रथम ऋतु चक्र के समय उम्र (माह) | 18.63±0.69 | 15–24 |
| प्रथम मिलन के समय उम्र (माह) | 32.24±0.76 | 30–34 |
| प्रथम प्रसूति के समय उम्र (माह) | 43.68±0.13 | 41–46 |
| गर्भ धारण के लिए मिलन संख्या | 2.17±0.03 | 2–3 |
| प्रसूति से गर्भ धारण का समय (दिन) | 29.35±1.58 | 10–50 |
| दो प्रसूति के बीच अन्तराल (दिन) | 371.72±1.69 | 345–380 |
| गर्भकाल (दिन) | 332.26±0.63 | 330–335 |

## संरक्षण कार्यक्रम

इस नस्ल के घोड़ों की घटती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए परियोजना के अर्न्तगत एक संरक्षण कार्यक्रम भी सम्पूर्ण किया गया। प्रजनन क्षेत्र (पिन घाटी) में ही नस्ल के अनुरूप 58 वयस्क गर्भवती मादा घोड़ियों का चयन किया गया तथा अच्छे रखरखाव हेतु उन्हें एक निर्धारित राशि भी उपलब्ध करवाई गई। पूरे गर्भ काल में उन्हें समय–समय पर अन्य तकनीकी परामर्श भी दिया गया। इन मादाओं से उत्पन्न नर संतानों का दूसरे चरण में चयन किया गया, अच्छे रखरखाव हेतु उन्हें भी निर्धारित राशि उपलब्ध करवाई गई, ताकि इन का उपयोग नस्ल संरक्षण हेतु किया जा सके। परियोजना के इन प्रयासों को क्षेत्र मे बहुत सराहा गया।

## निष्कर्ष

चामूर्थी घोड़ों का हिमाचल प्रदेश के अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में बहुत उपयोग है, परन्तु इनकी संख्या निरन्तर घटती जा रही है। विक्रय के कारण अच्छी नस्ल के घोड़ों को प्रदेश से बाहर भेजा जा रहा है, जिससे प्रजनन क्षेत्र में इन की संख्या और कम होती जा रही है। बढ़ती महंगाई में सीमित संसाधन, कठिन भोगौलिक स्थिति एवं सरकारी उपेक्षा के कारण इनका पालन पोषण किसानों की आर्थिकी पर विपरीत असर डाल रहा है। अतः इस नस्ल के उत्थान हेतु सरकारी/अर्द्धसरकारी संस्थानों के द्वारा संचालित एकीकृत प्रयासों की बहुत आवश्यकता है। स्पिती घाटी के लरी नामक स्थान पर एक चामूर्थी घोड़ा प्रजनन केन्द्र भी पशु पालन विभाग द्वारा स्थापित किया गया है, जिसको और ज्यादा सुदृढ़ करने की जरूरत है।

## संदर्भ

1. स्पिती घोड़ों का सर्वेक्षण एवं चरित्रीकरण (2001–2003)। अन्तिम रिपोर्ट। पशु प्रजनन एवं आनुवंशिकी विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय, हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर (हि. प्र.)
2. स्पिती घोड़ों का प्रजनन क्षेत्र में संरक्षण (2001–2003)। अन्तिम रिपोर्ट। पशु प्रजनन एवं आनुवंशिकी विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय, हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर (हि. प्र.)

☆☆☆☆☆

# संकर प्रजनन का उत्कृष्ट परिणाम–वृन्दावनी गाय

***ज्ञानेन्द्र कुमार गौड़, भारत भूषण, मन्जुनाथ पटेल एवं मुकेश सिंह***
*पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन अनुभाग*
*भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उत्तर प्रदेश)*

भारतवर्ष में संकर प्रजनन का आरम्भ सन् 1875 में पटना के आसपास शोर्टहौर्न साँड़ों के देशी गायों में प्रयोग के साथ हुआ। मद्रास राज्य के नीलगिरी क्षेत्र एवं आसाम तथा बंगाल के पर्वतीय क्षेत्रों में भी यूरोपियन संघों तथा चाय उत्पादकों द्वारा संकर प्रजनन लगभग इसी समय प्रारम्भ किया गया। सैन्य फार्मो पर संकर प्रजनन विदेशी नस्लों जैसे फ्रीजियन, जर्सी, गोरनसे, आयरशायर एवं शोर्टहौर्न एवं देशी नस्लों जैसे साहीवाल, हरियाना, थरपारकर, सिन्धी एवं गिर के प्रयोग से 1891 में प्रारम्भ हुआ। एक अन्य संकर प्रजनन परियोजना इम्पीरियल डेरी रिसर्च इंस्टीटयूट, बंगलौर पर आयरशायर एवं हरियाना/रेड सिंधी का प्रयोग करके 1910 में आरम्भ हुई। पशु धन अनुसंधान स्टेशन, हसर (मद्रास राज्य) ने आयरशायर एवं रेडसिंधी का प्रयोग करके संकर परियोजना 1919 में आरम्भ की। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा (बिहार) ने 1920 में तथा इलाहाबाद कृषि संस्थान ने 1924 में संकर प्रजनन का कार्य आरम्भ किया। रॉयल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर (1926) ने स्पष्ट किया कि गोपालकों को 3500 लीटर दूध प्रति ब्यॉंत प्रति गाय प्राप्त करने के लिये देशी पशुओं का संकर नस्लों से प्रजनन कराना चाहिये।

गोसंवर्धन की केन्द्रीय परिषद् ने 1961 में अवर्णित गोपशुओं का संकरण हौल्स्टीन–फ्रीजियन, ब्राउन स्विस एवं जर्सी नस्लों से करने की संस्तुति की। पशुपालन विभाग के वैज्ञानिक पैनल (1965) ने चयन द्वारा वर्णित नस्लों के विकास, अवर्णित पशुओं के उत्तम शुद्ध नस्लों द्वारा उत्थान एवं सघन क्षेत्रों में संकर प्रजनन अपनाने पर जोर दिया। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (1955) ने संकर पशुओं में विदेशी रक्त की प्रतिशतता का आंकलन करने के लिये पर्वतीय क्षेत्रों में एक संकर परियोजना जर्सी नस्ल के साथ आरम्भ की गयी।

विदेशी एवं देशी नस्लों की उपयुक्तता जानने के लिये, विदेशी नस्ल की उचित रक्त प्रतिशतता का आंकलन करने के लिये, अंतः प्रजनन का प्रभाव जानने के लिये एवं नस्ल वातावरण की प्रतिक्रिया का पता लगाने के लिये अखिल भारतीय समन्वय अनुसंधान परियोजना (गोपुश) अप्रैल, 1996 से कार्यरत् हुई। यह परियोजना इज्जतनगर, लाम, रहुरी, जबलपुर एवं हरिनघटा ईकाईयों पर चलाई गई। इस परियोजना में इज्जतनगर इकाई पर फ्रीजियन, ब्राउन स्विस एवं जर्सी विदेशी मूल की नस्लें एवं हरियाना स्वदेशी नस्ल प्रयोग की गई। परियोजना के अन्तर्गत अनेक संकर लाइनों को विकसित किया गया एवं उनकी उत्पादकता का आंकलन किया गया। सन् 1985 में अखिल भारतीय समन्वयन अनुसंधान परियोजना (गोपुश) के समाप्त होने के पश्चात् इज्जतनगर इकाई पर सभी लाइनों को धीरे–धीरे आपस में मिला दिया गया। अन्ततः सन 2006 में लगभग 10 पीढ़ियों के पश्चात् संकर प्रजनन से विकसित इस लाइन को वृन्दावनी का नाम दे दिया गया।

अतः, वृन्दावनी भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, उत्तर प्रदेश द्वारा संकरण से विकसित उत्तम दुग्ध–उत्पादन क्षमता वाली गौ नस्ल है। इसमें विदेशी गौ नस्लों (हॉल्सटीन फ्रीजियन, जर्सी तथा ब्राउन स्विस) के रक्त की प्रतिशत 50–75 एवं देशी हरियाना नस्ल के रक्त की प्रतिशत 25 से 50 के बीच है। यह नस्ल उत्तर प्रदेश के तराई एवं आसपास के क्षेत्रों, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान के निकटवर्ती क्षेत्र एवं हरियाणा में काफी प्रचलित हो रही है। ऐसा पाया गया है कि वृन्दावनी नस्ल के क्षेत्रीय वातावरण के प्रति अद्वितीय अनुकूलन क्षमता मौजूद है।

**प्रजनन क्षेत्र का वातावरण:** इज्जतनगर (बरेली) उत्तरप्रदेश समुद्र स्तर से 169.2 मी. की औसत ऊँचाई, 2.8°22′ उत्तरी अक्षांश एवं 79°24′ पूर्व देशांतर पर स्थित है। यह भारत की ऊपरी गंगा का मैदानी क्षेत्र है। यहाँ तापक्रम विभिन्न ऋतुओं में 4° से 44° से. ग्रे. के बीच (वर्ष का औसत तापक्रम 25° से. ग्रे.) रहता है।

**शारीरिक बनावट व गुण:** वृन्दावनी पशुओं का शारीरिक रंग मुख्यतः बादामी होता हैं। यद्यपि काले, सफेद एवं गहरे पीले पशु की कुछ संख्या भी मिलती है। सामान्यतः पूरे शरीर का रंग एक सा होता है, लेकिन कुछ पशु रंग बिरंगे, छॉयाकित या चित्तीदार भी होते हैं। मुख बंधनी सामान्यतः सलेटी होती है। अग्रसर अधिकतर पशुओं में सफेद होता है, लेकिन कुछ पशुओं में यह बादामी, काला या गहरा पीला भी होता है। पूँछ मध्यम से लम्बी होती है। पूछाग्र काली एवं सफेद दोनों रंग की मिलती है। अग्रसर अवतल प्रकार का होता है। मुख बंधनी मध्यम आकार की एवं गल कम्बल छोटा होता है। शरीर सामान्यतः मध्यम एवं गठीला होता है। आँखें मध्यम आकार की एवं चमकीली होती हैं। कान मध्यम आकार के पार्श्विक गठित होते हैं। वृन्दावनी गायों में वैसे तो सींग पाये जाते हैं, परंतु जन्म के बाद बछड़े/बछड़ियों के सीगों का रोधन कर दिये जाने के कारण वयस्क गायें बिना सींग के ही दिखाई पड़ती हैं। सामान्यतः वृन्दावनी गायों में गर्दन पतली एवं लम्बी होती हैं। टाँगे मध्यम आकार की एवं शरीर से भली भाँति वर्गाकार रूप में जुड़ी होती है। शरीर के ऊपर छोटे/मध्यम आकार के चमकदार बाल होते हैं। अयन सामान्यतः द्रोणिका, कटोरा, गोला या शंकु के आकार का होता है। थन अधिकतर बेलनाकार, कीपाकार या नाशपाती के आकार के होते हैं। वृन्दावनी गायों में थनो की औसत लम्बाई लगभग 5.25 से.मी. एवं एक थन का व्यास लगभग 2.25 सें.मी. होता है। वृन्दावनी पशु अधिकॉशतः सीधे स्वभाव के होते हैं। वृन्दावनी पशुओं की ऊँचाई, लम्बाई एवं हर्ट गर्थ निम्न तालिका में दी गई है:

**तालिका 1: वृन्दावनी पशुओं की ऊँचाई, लम्बाई एवं हर्ट गर्थ**

| वर्ग | ऊँचाई (से.मी) | लम्बाई (से.मी) | हर्ट गर्थ (से.मी) |
|---|---|---|---|
| गाय | 122 | 156 | 172 |
| साँड़ | 128 | 172 | 195 |

**पशुओं की संख्या:** भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान इज्जतनगर के गाय एवं भैंस प्रक्षेत्र में जनवरी 2013 को वृन्दावनी पशुओं की कुल संख्या 411 थी, जिनमें से 358 मादा एवं 53 नर पशु थे। मादा पशुओं में 50 छः महीने तक की आयु के बच्चे, 22 छः महीने से बारह माह तक की आयु के बच्चे, 101 एक से तीन वर्ष तक की आयु वाली बछड़ियों, 142 दुग्ध उत्पादन करने वाली गायें एवं 26 शुष्क गाय सम्मिलित

थी। नर पशुओं में 29 एक वर्ष तक की आयु वाले बच्चे, 4 एक से दो वर्ष तक की आयु वाले युवा सांड एवं 19 वयस्क सांड सम्मिलित थे। भा. प. चि. अ. सं. इज्जतनगर ने सन् 1997 से 2012 तक कुल 1313 वृन्दावनी पशुओं की नीलामी भी पशु पालकों के बीच की है। इस क्षेत्र में वृन्दावनी पशुओं की संख्या बढ़ाने के लिये भा. प. चि. अ. सं., इज्जतनगर ने उत्तम साँड़ो का हिमीकृत वीर्य (लगभग 46000 स्ट्रा) किसानों, सरकारी संस्थानों एवं गैर सरकारी संस्थानों में भी बाँटा है।

**शारीरिक वृद्धि क्षमता:** वृन्दावनी नस्ल के पशुओं की औसत शारीरिक भार जन्म के समय, 3, 6, 12, 18 एवं 24 माह की उम्र पर क्रमशः 22, 45, 91, 150, 246 एवं 300 कि. ग्रा. होता है।

**दुग्ध उत्पादन क्षमता:** वृन्दावनी नस्ल उत्तम दुग्ध उत्पादन वाली संकर गौ नस्ल है। इन गायों का वार्षिक आद्र (वैट) औसत 10. 50–11.50 कि. ग्रा./दिन तथा समूह औसत 8.50–9.50 कि. ग्रा./दिन के बीच रहता है। इन गायों के दुग्ध में वसा, वसा रहित ठोस पदार्थ एवं कुल ठोस पदार्थ का प्रतिशत क्रमशः 4–4.5, 8–9 एवं 12–14 के बीच रहता है। सन् 2012 में भा. प. चि. अ. सं. इज्जतनगर पर उपलब्ध वृन्दावनी गायों का एक ब्यांत का कुल औसत दुग्ध उत्पादन 3500 कि. ग्रा., दुग्ध काल 316 दिन, प्रतिदिन औसत दुग्ध उत्पादन 10.74 कि. ग्रा., 305 दिन का औसत दुग्ध उत्पादन 3493 कि.ग्रा. अधिकतम दैनिक दुग्ध उत्पदान औसत 18.41 कि. ग्रा. पाया गया। वृन्दावनी नस्ल में ऐसे भी पशु उपलब्ध है, जिनका दैनिक उत्पादन 30–35 कि. ग्रा. प्रतिदिन है। ब्यांत के उपरांत अधिकतम दुग्ध उत्पादन प्रदर्शित करने का अंतराल 72 दिन तथा प्रथम बार ब्याने के समय शारीरिक भार 406 कि. ग्रा. उपरोक्त अवधि में मिला। प्रायः देखा गया है कि वृन्दावनी नस्ल के पशु जाड़े (दिसम्बर से फरवरी के महीनों ) में ज्यादा दुग्ध उत्पादन करते हैं। इसका मुख्य कारण अच्छे हरे चारे की उपलब्धता एवं पशुओं में उपस्थित 50–75 प्रतिशत विदेशी ठंड़े देशों की गौ नस्लों का रक्त है। पशुओं में गर्भपात आदि होने पर दुग्ध का उत्पादन घट जाता है। वृन्दावनी बछिया को 225–250 कि. ग्रा. भार के बीच गाभिन कराने पर अधिकतम दुग्ध उत्पादन प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में असामान्य प्रसव की संभावनाऐं भी कम होती हैं।

**पुनुरूत्पादन क्षमता:** वर्ष 2012 के आंकड़े दर्शाते हैं कि वृन्दावनी गायों में प्रथम ब्यांत आयु, शुष्क काल, दो ब्यांतों के बीच का अंतराल, सर्विस काल क्रमशः 990, 97, 445 एवं 103 दिन थे। वृन्दावनी गायों की पुनुरूत्पादन क्षमता आहार, प्रबंधन, बीमारी आदि के प्रकोप से भी प्रभावित होती है।

**व्याधियाँ, रोकथाम एवं मृत्युदर:** वृन्दावनी गायों में खुरपका मुँहपका, गलाघोटू एवं ब्रूसैलोसिस के टीके लगाये जाते हैं। खुरपका मुँहपका का टीका वर्ष में दो बार अप्रैल/मई एवं अक्तूबर/नवम्बर में लगाया जाता है। गलघोटू का टीका वार्षिक है जो मई के अंतिम/जून के प्रथम सप्ताह में लगाया जाता है। ब्रूसैलोसिस का टीका बछड़ियों में 4 महीने की उम्र के बाद लगाते हैं। वृन्दावनी पशुओं में पेट के कीड़ों की दवाई जन्म के प्रथम सप्ताह के पश्चात् आरम्भ हो जाती है। बच्चों को प्रथम/द्वितीय सप्ताह में पिपराजिन साइट्रेट की खुराक पिलाते हैं। जन्म के एक माह पर कोक्सीडिओस्टेट की खुराक दी जाती है। तदुपरांत तीन माह के अंतराल पर ब्रौड स्पैट्रम एन्थैलमिनटिक्स की खुराकें दी जाती हैं। वयस्क पशुओं में उपरोक्त दवाई छः माह के अंतराल पर दी जाती है। जूँ एवं किलनी के नियंत्रण के लिये वर्ष में दो बार (अप्रैल/मई एवं सितम्बर/अक्तूबर) एक्रीसाइडल स्प्रे वृन्दावनी पशुओं पर किया जाता है।

वृन्दावनी नस्ल में शारीरिक व्याधियों का प्रकोप सामान्य ही रहता है। दस्त, पेचिस, अफारा, चोट, बुखार, निमोनिया सामान्यतः इन पशुओं में मिलते हैं, जिनको किसी भी प्रशिक्षित पशु चिकित्सक की सलाह से ठीक किया जा सकता है। वृन्दावनी नस्ल में औसत वार्षिक मृत्यु दर 5.78 प्रतिशत है।

**गृह व्यवस्था एवं प्रबन्धन:** प्रायः देखा गया है कि वृन्दावनी गायों को बांधकर रखने की बजाय यदि खुले बाड़ो में रखा जाये तो वे अच्छा महसूस करती हैं तथा अधिक दूध देती हैं। साथ ही इस प्रकार के बाड़ो में चारे, दाने एवं पानी का प्रबंध करना ज्यादा आसान है। खुला पशु जरूरत के अनुसार चारा पानी आदि ग्रहण कर लेता है तथा अपने दुग्ध उत्पादन को उचित स्तर पर बनाये रखता है। ज्यादा गर्मी की स्थिति में वृन्दावनी गायों को दुग्ध दोहन से पहले ठंडे पानी से नहलाने पर गर्मी से बचाव होता है तथा साथ ही स्वच्छ एवं अधिक दुग्ध उत्पादन सुनिश्चित होता है। अधिक जाड़े की स्थिति में पशुओं को नहलाने से बचाना ही हितकर होता है। वृन्दावनी नस्ल सामान्यतः सर्दी एवं गर्मी के प्रभाव से अप्रभावित रहती हैं।

पशुगृह निर्माण हेतु स्थल सूखा एवं ऊँचे स्थान पर होना चाहिए, जहाँ पानी न जमा होता हो, दलदल रहित हो तथा अत्यधिक वर्षा के स्थान से दूर हो। पशु गृह की दीवार की ऊंचाई 1.5–2.0 मी., छत की ऊँचाई 3.0–4.0 मी., फर्श की ढाल 3 से. मी. प्रति मी. पक्की नाली की चौड़ाई 0.25 मी. ढका स्थान, 2.0 वर्ग मी. प्रति पशु, खोर की लम्बाई 1.05 मी. प्रति पशु, खोर के अग्रभाग की ऊँचाई 0.5 मी., खोर की गहराई 0.25 मी., खुला बाडा 4 वर्ग मी. प्रति पशु होना चाहिये। पशुगृह, खोर, दीवार, नालियों एवं बाड़ों के किनारे गोलाईयुक्त होने चाहिये, जिससे सफाई आसानी से हो सके तथा पशुओं को चोट आदि न लगे। पशुगृह स्वच्छ हवादार, गर्मियों में ठंडा एवं छायादार तथा सर्दियों में शुष्क एवं गर्म, बिछावन सहित, वर्षा से ढका हुआ, छायादार वृक्षों सहित होना चाहिए। पशुगृह में चारा तथा साफ पीने का पानी हर समय उपलब्ध होना चाहिये। पशुगृह के मूत्र–गोबर की नियमित सफाई आवश्यक है। पशुगृह एवं फर्श आदि बाह्य परजीवियों जैसे किलनी, जुओं, मक्खियों आदि से मुक्त होना चाहिये।

**वृन्दावनी बछड़े व बछड़ियों की व्यवस्था तथा प्रबंधन:** प्रायः देखा गया है कि जन्म के समय तुलनात्मक रूप से भारी बच्चे पूरे जीवनकाल अपने शारीरिक भार की उच्चता को बनाए रखते हुए अधिक दुग्ध का उत्पादन करते हैं तथा उनमें मृत्युदर भी कम होती है। वृन्दावनी बछड़े बछड़ियों की 0–3 माह के मध्य अच्छी देखभाल करनी चाहिये। इस अवधि में उचित देखभाल न होने पर दस्त एवं निमोनिया का प्रकोप बहुत होता है जिससे बच्चों में मृत्युदर की संभावना बढ़ जाती है। उक्त परिस्थितियों में तत्काल पशु चिकित्सक से परामर्श कर इलाज करवाना आवश्यक है। बच्चों को प्रसवोपरान्त शीघ्रातिशीघ्र एक घंटे के अन्दर शारीरिक भार के अनुपात में (1/10 वां भाग) खीस पिलाना चाहिए। इससे उन्हें विभिन्न बीमारियों से लड़ने की क्षमता प्राप्त हो जाती है एवं उनमें मृत्यु दर कम होती है। तदुपरांत दो माह की आयु तक शारीरिक भार का 1/10 भाग दूध एवं दो माह से छः माह तक शारीरिक भार का 1/20–1/40 भाग दूध बच्चों को पिलाना चाहिए। बच्चों के शरीर की अतिरिक्त आवश्यकता की पूर्ति हेतु उन्हें दस दिन की आयु पर कुछ मात्रा में (लगभग 100 ग्राम प्रति बच्चा) स्टार्टर राशन/दाना भी उपलब्ध कराना चाहिए। स्टार्टर राशन की मात्रा आयु के साथ साथ बढ़ाते रहना चाहिये। छः माह की आयु पर एक स्वस्थ बच्चा एक कि.ग्रा. दाना लेता है। दूध एवं स्टार्टर राशन के साथ–साथ बच्चों को ताजा हरा चारा भी 10 दिन की आयु पर आरम्भ कर देना चाहिए। स्टार्टर राशन के अवयव एवं उनका प्रतिशत निम्न तालिका में दिया है:

**तालिका 2: बछड़े व बछड़ियों के लिए स्टार्टर राशन के अवयव एवं उनका प्रतिशत**

| दाना अवयव | प्रतिशत मात्रा |
|---|---|
| गेहूँ का चोकर | 40 |
| मछली की खली | 07 |
| मक्का | 50 |
| खनिज मिश्रण | 02 |
| साधारण नमक | 01 |

**आहार व्यवस्था एवं प्रबंधन:** वृन्दावनी गायों को वर्ष भर हरा चारा दिया जाता है। रबी फसलों में बरसीम, रिजका एवं जई तथा खरीफ फसलों में मक्का, ज्वार एवं लोबिया मुख्य हैं। औसत रूप से 40–50 कि.ग्रा. हरा चारा प्रति गाय प्रति दिन खिलाकर अच्छा दुग्ध उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। हरे चारे में शुष्क पदार्थ की मात्रा कम होने पर साथ में भूसा मिला देने से पशुओं को दस्त आदि की समस्या से बचाया जा सकता हैं। साथ ही शरीर में पोषक तत्वों की जरूरतों को पूरा करने हेतु संतुलित दाना भी पशुओं को उनकी आयु, अवस्था, दुग्ध उत्पादकता तथा अन्य जरूरतों के हिसाब से देना चाहिए। संतुलित दाना पशुपालक स्वयं भी अवयवों को खरीकर तालिकानुसार बना सकते हैं। बेहतर होगा कि संतुलित दाने की ग्राहयता एवं पाचकता को बढ़ाने हेतु उसे खिलाने से पूर्व पानी में भिगो दिया जाये। पशुओं में नमक तथा खनिज पदार्थ की पूर्ति हेतु बाड़ों में नमक तथा खनिज पदार्थ से निर्मित ब्लॉक को भी उपलब्ध कराया जा सकता है। सामान्यतः पशु अपने शारीरिक भार का 2.5–3.0 प्रतिशत शुष्क पदार्थ आसानी से ग्रहण कर लेता है। इसमें से 1/3 भाग दाने से तथा 2/3 भाग चारे से उपलब्ध कराना चाहिये। संतुलित दाना मिश्रण से पशु के उत्पादन को विपरीत प्रभावों से सुरक्षित रखा जा सकता है।

**तालिका 3: विभिन्न पशु समूहों हेतु आवश्यक संतुलित दाने की मात्रा**

| अवस्था | दैनिक आवश्यकता (कि. ग्रा. /पशु / दिन) |
|---|---|
| 1. वयस्क गाय | |
| (अ) शारीरिक रख रखाव | 1.0 |
| (ब) दुग्ध–उत्पादन | 1.0–1.5 कि. ग्रा./2.5–3.0 कि. ग्रा. दुग्ध उत्पादन |
| (स) गाभिन पशु की आवश्यकता | 1.5 |
| (द) शुष्क गाय | 1.5–2.0 |
| 2. बछिया | |
| (अ) 18 माह | 2.5 |
| (ब) 12–18 माह | 2.0 |
| (स) 6–12 माह | 1–1.5 |

**तालिका 4: संतुलित दाना मिश्रण के अवयव एवं उनका प्रतिशत**

| दाना अवयव | प्रतिशत मात्रा |
|---|---|
| गेहँ का चोकर | 47 |
| खली (सोयाबीन/मुँगफली/सरसों) | 20 |
| मक्का | 30 |
| खनिज मिश्रण | 02 |
| साधारण नमक | 01 |

सामान्य तौर पर 8–10 कि. ग्रा. दैनिक दुग्ध उत्पादन करने वाले पशुओं को दिन में दो बार (12 घंटे के अंतराल पर) हाथ से दुहना चाहिए। उससे अधिक दुग्ध उत्पादन करने वाले पशुओं को दिन में तीन बार हाथ से दुहना चाहिऐ। अति उच्च दुग्ध उत्पादक (20 कि. ग्रा. से अधिक) पशुओं के दोहन हेतु दुग्ध दोहन मशीनों का प्रयोग वांछनीय है। दुग्ध दोहन का समय, अवस्था एवं ऋतु से अप्रभावित रहना चाहिए। दुग्ध दोहन की प्रक्रिया को पशु के दुग्ध उतारने के उपरांत शीघ्रातिशीघ्र संपन्न कर देना चाहिये। इस प्रक्रिया का पूर्ण समय पशु के दुग्ध की मात्रा के आधार पर 5–10 मिनट हो सकता है। दुग्ध दोहन हेतु पूर्ण हस्त विधि का प्रयोग करना चाहिये। दुग्ध दोहन से पूर्व पशु स्वच्छ होना चाहिये। बेहतर हो कि पशु को दुग्ध दोहन से पूर्व भली–भांति नहला दिया जाये। परंतु शीत ऋतु में इससे बचना ही बेहतर होगा। नहलाने से पशु के शरीर, थनों एवं अयन आदि पर लगा गोबर, गंदगी आदि धुल जाती है जिससे स्वच्छ दुग्ध उत्पादन सुनिश्चित होता है।

दुग्ध दोहन से पूर्व थनों, अयन, ग्वाले के हाथ आदि को पोटाशियम परमैंगनेट के 0.1 प्रतिशत घोल से धो कर साफ तौलिये से पोंछ देना चाहिए। पशु के थनों से पूर्ण दुग्ध दोहन आवश्यक है अन्यथा पशु के थनों में विकार उत्पन्न हो सकता है। थनों से दुग्ध के साथ छिछड़े, खून आदि आने पर या थन का छिद्र बंद हो जाने पर थनैला रोग हो सकता है, जिसके उपचार हेतु पशु चिकित्सक की सलाह आवश्यक है। पशुओं को दुग्ध दोहने से पूर्व संतुलित दाना दिया जा सकता है। ऐसा करने पर पशु दुग्ध आसानी से उतार देता है। दुग्ध दोहन से संबंधित बर्तन, मशीन, केन आदि को अच्छी प्रकार से साफ करके प्रयोग करना चाहिये। दुग्ध दोहन के उपरांत दुग्ध को यथाशीघ्र सहकारी दुग्ध समिति या विक्रय केन्द्र पर पहुंचा देना चाहिये, क्योंकि दुग्ध शीघ्र खराब होने वाला पदार्थ है तथा रखने से खराब होने पर आर्थिक हानि हो सकती है।

प्रायः गाभिन पशु गर्भ के 7–8 माह पूरा हो जाने पर दुग्ध उत्पादन काफी कम कर देते हैं। ऐसी परिस्थिति में गाभिन पशु का दुग्ध 1–2 कि. ग्रा. पहुँचने पर बंद कर देना चाहिये। इससे गाय के गर्भ में पल रहे बच्चे का उचित विकास होगा तथा साथ ही वह अगले ब्यांत में उच्च दुग्ध उत्पादन हेतु तैयार हो सकेगी। इस प्रकार के 365 दिन को 305 दिन दुग्ध काल तथा 60 दिन शुष्क काल के रूप में सुनिश्चित किया जा सकेगा।

**सुनियंत्रित प्रजनन:** वृन्दावनी गायों से अच्छे बछड़े बछड़ियाँ प्राप्त करने हेतु आवश्यक है कि उनको गर्मी के लक्षण प्रकट करने पर उत्तम दुग्ध उत्पादन क्षमता वाले सांडों से या उनके हिमीकृत वीर्य से गर्भित कराया जाये। सांड़ो के चुनाव में ध्यान रखना चाहिए कि प्रजनक सांड गर्भित कराये जाने वाले पशु (गाय/बछड़ियाँ) से 5–6 पीढ़ियों तक सम्बधित न हो। सांड का जनन तंत्र सामान्य हो। सांड में किसी भी तरह का शारीरिक दोष न हो। यह भी सुनिश्चित हो कि सांड के रिश्तेदार तथा मां, दादी, नानी एवं बहिनों का दुग्ध उत्पादन अच्छा रहा हो तथा उनमें किसी प्रकार के आनुवंशिक शारीरिक दोष न रहे हो। इसके अतिरिक्त सांड से पैदा हुए पहले बच्चे भी सामान्य हो। सांड के पूर्वजों में दस्त निमोनिया आदि बीमारियों के प्रति आवश्यक प्रतिरोधक क्षमता का अभाव भी नहीं होना चाहिये। सांड एवं उसके रिश्तेदारों का जन्म के समय शारीरिक भार औसत भार की तुलना में ज्यादा कम न रहा हो। साँड के पूर्वज जल्द परिपक्व होकर उत्पादन करने में सक्षम रहे हों। सांड की अन्य संततियों में गर्भ गिरने या फंसने का दोष न रहा हों। उक्त प्रकार के गुणों को धारण करने वाले सांड़ या उसके वीर्य में गर्मी में आयी गायों/बछड़ियों को 16–20 घंटे के भीतर गर्भित करा देना चाहिए। वृन्दावनी गायों का गर्भकाल सामान्य तौर पर 280±5 दिन होता है।

**गर्भाधान एवं गर्भित पशुओं की व्यवस्था:** वृन्दावनी नस्ल की गायों के प्रथम बार ब्याने की आयु लगभग 28 से 38 माह होती है। इसके दो ब्यांतों के बीच का अंतराल 400–425 दिन होता है। प्रायः देखा गया है कि वृन्दावनी नस्ल की गायें साल भर गाभिन होती रहती है एवं वर्ष के हर माह में ब्यांती रहती हैं। परंतु, सामान्य तौर पर अगस्त माह से फरवरी माह के मध्य में गायें ज्यादा ब्याती हैं। वृन्दावनी गायों का प्रथम ब्यांत के समय औसत वजन 300–325 कि. ग्रा. के बीच होता है, जो कि क्रमशः बढ़ते हुए छठे या अधिक ब्यांतों में लगभग 540–550 कि. ग्रा. तक हो जाता है। पशु प्रजनन को इस प्रकार से सुव्यवस्थित करना चाहिये कि पशु ब्याने के 45–60 दिन उपरांत गर्भित हो जाये। गर्भ काल के दौरान गाभिन पशुओं का पूरा ध्यान रखने की आवश्यकता है। गर्भावस्था के अन्तिम 45–60 दिन में पशु को अतिरिक्त दाना तथा पौष्टिक हरा चारा देने से पैदा होने वाले बच्चे का वजन तो बढ़ता ही है, साथ ही अगले ब्यांत में गाय का दुग्ध उत्पादन भी बढ़ता है। इस अवधि के दौरान पशुओं को साफ स्वच्छ स्थान पर रखा जाना चाहिये। यह स्थान हवादार तथा मौसम के प्रतिकूल प्रभाव से विमुक्त होना चाहिये।

☆☆☆☆☆

# देश में अग्रणी राजस्थानी भेड़ सम्पदा

*अरूण कुमार तोमर[1], आशीष चोपड़ा, अनिल कुमार मिश्र[2] एवं एस एम के नकवी*

*केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर (राजस्थान)*

*[1]गोपशु परियोजना निदेशालय, ग्रास फार्म रोड, मेरठ छावनी (उ.प्र.), [2]रा.प.आ.सं.ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)*

भारत में लगभग तीन–चौथाई जनता अपनी जीविकोपार्जन के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि या इससे संबंधित क्षेत्रों से जुड़ी हुई है। देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में लघु रोमन्थियों (भेड़–बकरी) का उल्लेखनीय योगदान है, क्योंकि इन पशुओं से निर्धन किसान जुड़े हुए हैं। खेती के साथ–साथ भेड़–बकरी पालन न केवल आर्थिक रूप से लाभदायक है, बल्कि अच्छा पर्यावरण बनाये रखने में भी सहायक है। देश के उन क्षेत्रों में भेड़–बकरी पालन सीमान्त किसानों, खेतिहर मजदूरों और घुमन्तू पशु पालकों का प्राचीन व्यवसाय है जहाँ फसल उत्पादन प्रायः व्याप्त प्रतिकूल कृषि–जलवायुकीय परिस्थितियों के कारण काफी मुश्किल है। भेड़ का छोटा आकार, शारीरिक आवश्यकता एवं बहुपयोगी होना, पशुधन में एक विशेष महत्व रखता है। भारत के शुष्क, अर्द्ध–शुष्क एवं पर्वतीय क्षेत्रों में सदियों से कृषकों की जीविका का मुख्य आधार भेड़ पालन ही रहा है। भेड़ पालकों की आर्थिक दृष्टि को देखते हुए उनके लिए बड़े पशुओं (गाय, भैंस आदि) की खरीद, उनका रख–रखाव तथा शारीरिक आवश्यकता को पूरा करना एक कठिन कार्य होता जा रहा है।

राजस्थान में भेड़ पालन एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं लाभकारी व्यवसाय है क्योंकि यहाँ पर फसल उत्पादन, वर्षा की कमी तथा अनिश्चितता होने के कारण काफी दुरूह है। राजस्थान का अधिकांश भाग शुष्क एवं मरू क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। यहाँ पर अधिकतर खेती वर्षा पर आधारित है। वर्षा न होने के कारण पशुपालन में भेड़ पालन कृषकों की आय का मुख्य साधन है। राजस्थान की भू–सम्पदा, जलवायु, समुद्रतल से ऊँचाई एवं वनस्पति में विविधता का प्रभाव यहाँ उपलब्ध भेड़ों पर भी पड़ता है, जिससे भेड़ों को विभिन्न नस्लों के रूप में पहचाना जा सकता है। राजस्थान में चोकला, नाली, मारवाड़ी, मगरा, पूगल, जैसलमेरी, मालपुरा, सोनाड़ी एवं खेरी भेड़ नस्लें पाली जाती हैं। इनमें से चोकला और मगरा नस्ल से गलीचा बनाने के लिए उत्तम प्रकार की ऊन प्राप्त होती है। सोनाड़ी एवं मालपुरा नस्ल की भेड़ों से प्राप्त ऊन मोटी किस्म की होती है जिसको नमदा बनाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। भेड़ संख्या एवं भेड़ पालन व्यवसाय की दृष्टि से उत्तर पश्चिमी क्षेत्र देश में दूसरा स्थान रखता है। इस क्षेत्र में पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश के मैदानी भाग, राजस्थान, गुजरात तथा मध्य प्रदेश आते हैं। इन सभी राज्यों की जलवायु आमतौर से शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क प्रकार की है तथा यहाँ के भूमिहीन एवं सीमान्त कृषकों का मुख्य व्यवसाय भेड़–बकरी पालन ही है।

भेड़ पालन में राजस्थान अन्य प्रान्तों की तुलना में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पशुगणना के अनुसार, यहाँ भेड़ों की संख्या एक करोड़ 43 लाख 12 हजार है जिसका 99 प्रतिशत भाग गाँवों में है। भेड़ों से राज्य को 150–200 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष प्राप्त होते है। राज्य में लगभग 2.5 लाख परिवार सीधे तौर पर भेड़ व्यवसाय पर तथा इतनी ही संख्या में इन से प्राप्त उत्पाद जैसे ऊन, माँस, चमड़ा के विपणन व ऊन पर आधारित उद्योगों पर आश्रित हैं। भेड़ों से राजस्थान में करीब 200 लाख कि.ग्रा. ऊन, 400 लाख कि.ग्रा. माँस व 57 लाख नग चमड़ा मिलता है। राजस्थान में पिछले 5–6 वर्षों में भेड़ों की संख्या में 17 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई है।

यह गौर करने का विषय है कि देश के जिन क्षेत्रों में अकाल की छाया पड़ती रहती है, वर्षा कम होती है, जलवायु शुष्क रहती है, घास बारीक होती है तथा चराने के लिए विशाल रेतीले क्षेत्र के अलावा कुछ नहीं है, वहाँ भेड़ों की ऊन उत्तम श्रेणी की होती है परन्तु इसके विपरीत जहाँ वर्षा अधिक होती है,वनस्पति की अधिकता है तथा घास मोटी पत्तीनुमा है वहाँ ऊन भी मोटी एवं निम्न श्रेणी की पैदा होती है। प्रस्तुत लेख में राजस्थान में पाई जाने वाली प्रमुख भेड़ो की नस्लों का संक्षेप में वर्णन दिया जा रहा है, जिसके आधार पर भेड़ पालक, विद्यार्थी, ग्रामसेवक तथा अन्य भेड़ व्यवसाय से जुड़े कार्यकर्ता भेड़ नस्ल को उनकी शारीरिक बनावट, उपयोगिता तथा उनके प्राप्त होने के स्थान को जानकर भेड़ पालन व्यवसाय को अधिक लाभकारी बना सकते हैं।

## मालपुरा

इस नस्ल की भेड़ का नाम राजस्थान के टोंक जिले की मालपुरा तहसील के नाम पर पड़ा है। यह मुख्य रूप से माँस उत्पादक नस्ल है जिसकी ऊन मोटी किस्म की होती है। मालपुरा नस्ल की भेड़ें मुख्य रूप से जयपुर, टोंक एवं अजमेर जिलों में पाई जाती हैं। इसके शरीर की बनावट मजबूत एवं गठीली होती है। इस नस्ल के पशुओं का चेहरा हल्के भूरे रंग का होता है। इनके कान छोटे एवं मुड़े हुए तथा पूँछ पतली और मध्यम लम्बाई की होती है। पूँछ की औसतन लम्बाई लगभग 24 से. मी. होती है। इनके मुँह, पेट व टाँगों पर ऊन नहीं होती है। दोनों लिंग सींग रहित होते हैं। वयस्क नर का शारीरिक भार 36–42 तथा मादा का 24–30 कि. ग्रा. होता है। बच्चों का औसत जन्म भार 2.6–3.5 कि. ग्रा. होता है। वयस्क नर की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 68–74 तथा 62–72 से. मी. तक होती है तथा मादा की लम्बाई 61–65 तथा ऊँचाई 60–64 से. मी. तक होती है। इस नस्ल के नर व मादा क्रमशः 18 एवं 14 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाते हैं। भेड़ों से उत्पन्न ऊन सफेद व अधिक मोटी किस्म की होती है। इन भेड़ों से प्रतिवर्ष लगभग 0.8–1.4 कि. ग्रा. ऊन प्राप्त होती है। इनसे प्राप्त ऊन के तन्तु की लम्बाई, व्यास तथा मेडूलेशन क्रमशः 5–7 से. मी., 40–50 माईक्रॉन तथा 70–85 प्रतिशत होता है। इनकी मादा भेड़ों में दूध की मात्रा अच्छी होती है जिससे अपने बच्चों को ठीक से पालन कर लेती है। भेड़ प्रतिदिन लगभग 350–650 ग्रा. दूध देती है। इनके नर बच्चों को मांस के लिए पाला जाता है तथा सघन खिलाई से 6 माह की आयु पर इनका शारीरिक भार लगभग 30 कि. ग्रा. तक हो जाता है।

## मगरा

इस नस्ल की भेड़ें मुख्य रूप से राजस्थान के बीकानेर, जैसलमेर, नागौर एवं चूरू जिलों में पाई जाती हैं। इनका शरीर मजबूत एवं गठीला होता है तथा खाल का रंग हल्का गुलाबी होता है। इनका चेहरा सफेद रंग का तथा आँखों की गोलाई पर हल्के रंग के धब्बे होते हैं, जो इस नस्ल की मुख्य पहचान है। इन भेड़ों के कान मध्यम लम्बाई के तथा मुड़े हुए होते हैं। इनकी पूँछ पतली व मध्यम लम्बाई (लगभग 20 से. मी.) की होती है। इस नस्ल के पशु का शरीर मध्यम से बड़ा होता है। इन भेड़ों की टाँगे मध्यम लम्बाई की तथा इनके खुर सख्त एवं सफेद रंग के होते हैं। नर व मादा दोनों सींग रहित होते हैं। इस नस्ल के वयस्क नर व मादा का औसत शारीरिक भार क्रमशः 24–28 एवं 18–22 कि. ग्रा. होता है, जबकि परिपक्व नर व मादा का शारीरिक भार क्रमशः 34–36 तथा 27–30 कि. ग्रा. तक पहुँच जाता है। नर पशु के शरीर की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 64–68 तथा 62–54 सेमी. होती है जबकि मादा पशु की लम्बाई 62–66 तथा ऊँचाई 60–62 से. मी. तक होती है। इसके नर व मादा बच्चों का औसतन जन्म भार क्रमशः 2.9 एवं 2.6 कि. ग्रा. होता है। नर व मादा क्रमशः 18 व 20 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाते हैं। मगरा से प्राप्त ऊन विश्व में गलीचे निर्माण के लिए उत्तम मानी जाती है। इस नस्ल की भेड़े 1.8–2.3 कि. ग्रा. तक ऊन प्रतिवर्ष देती हैं। इनसे प्राप्त ऊन मध्यम श्रेणी की, चमकदार व सफेद रंग की होती है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 5–7 से. मी. तथा तन्तु की औसत मोटाई 35–45 माइक्रॉन होती है।

## चोकला

यह नस्ल शेखावटी एवं छापर के नाम से जानी जाती है। इस नस्ल की भेड़े मुख्य रूप से राजस्थान के शेखावटी इलाके जैसे चुरू, झून्झूनू, सीकर, नागौर तथा बीकानेर एवं जयपुर जिलों के रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाई जाती है। इस नस्ल के पशु साधारणतयः मध्यम एवं वर्गाकार होते है। इन भेड़ों का मुँह गहरे भूरे रंग का होता है, जो कि सिर तथा नीचे आधी गर्दन तक फैला रहता है। इन भेड़ों के कान छोटे तथा दोनों लिंग सींग रहित होते हैं। इनकी पूँछ पतली व मध्यम लम्बाई (लगभग 25 से. मी.) की होती है। इस नस्ल के नर तथा मादा पशुओं की शारीरिक भार क्रमशः 32–36 एवं 22–28 कि. ग्रा. होता है। इन भेड़ों की लम्बाई व ऊँचाई लगभग एक समान होती है जिससे पशु वर्गाकार दिखाई देता है। नर पशु की औसत लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 65–67 तथा मादा की 58–82 से. मी. होती है। मेमनों का जन्म भार 2.2–2.8 कि. ग्रा. होता है। मादाओं में दूध की मात्रा कम होती है, जिसके कारण मेमने कमजोर तथा छोटे कद के होते हैं। इस नस्ल को राजस्थान की मेरीनो कहा जाता है, क्योंकि अन्य राजस्थानी भेड़ों की तुलना में इस नस्ल की ऊन सर्वाधिक मुलायम एवं बारीक होती है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 1.0–1.8 कि. ग्रा ऊन प्राप्त होती है। इनसे प्राप्त ऊन के तन्तु की लम्बाई 5–7 से. मी., तन्तु का व्यास 24–30 माईक्रान तथा मेडूलेशन 20–30 प्रतिशत होता है।

## मारवाड़ी

राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में अधिकता से पाई जाने वाली भेड़ की नस्ल को मारवाड़ी कहा जाता है। यह भेड़ मुख्य रूप से जोधपुर, पाली, नागौर, जालौर, बाड़मेर, सिरोही तथा इन जिलों से लगे हुए क्षेत्रों में पाई जाती है। इस नस्ल की भेड़ों का शरीर मध्यम आकार का होता है। भेड़ों का चेहरा काले रंग का होता है तथा यह रंग गर्दन के निचले भाग तक फैला रहता है। इनके कान काफी छोटे तथा अंदर की ओर मुड़े हुए होते हैं। नर व मादा दोनो ही सींग रहित होते हैं। इनकी पूँछ पतली व छोटी से मध्यम लम्बाई की होती है। इसके नर का शारीरिक भार 28–35 तथा मादा का 25–30 कि. ग्रा. तक होता है। नर पशु की लम्बाई एवं ऊँचाई क्रमशः 68–74 तथा 58–64 से. मी. होती है जबकि मादा की लम्बाई एवं ऊँचाई क्रमशः 66–70 तथा 56–60 से. मी. होती है। इस नस्ल की भेड़ों का शरीर सुगठित एवं मजबूत तथा इनकी टाँगे लम्बी व मजबूत होती हैं जिसके कारण इस नस्ल की भेड़ें दूसरी नस्ल की भेड़ों की तुलना में अधिक दूरी तक चलने में सक्षम होती हैं। नर व मादा भेड़ें क्रमशः 14 व 18 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाती हैं। मेमनों का जन्म भार 2.7–3.2 कि. ग्रा. होता है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 1.4–2.3 कि. ग्रा. सफेद व मोटी श्रेणी की ऊन प्राप्त होती है। इनसे प्राप्त ऊन के तन्तु की लम्बाई 7–9 से. मी., तन्तु का व्यास 32–40 माईक्रॉन तथा मेडूलेशन 55–65 प्रतिशत होता है।

## नाली

इस नस्ल की भेड़ें राजस्थान के गंगानगर, चूरू, झुन्झुनू और हरियाणा के हिसार एवं रोहतक जिलों के दक्षिणी भागों में पाई जाती है। यह नाली क्षेत्र कहा जाता है क्योंकि यहाँ का धरातल नीचा है। यह मध्यम से बड़े आकार की नस्ल है, जिसका शरीर मजबूत

होता है। इनके चेहरे का रंग हल्का भूरा तथा खाल का रंग गुलाबी होता है। इन भेड़ों के कान लम्बे व पत्तीनुमा होते हैं। दोनों लिंग सींग रहित होते है। इन पशुओं की टाँगे छोटी तथा खुर पीले रंग के होते हैं। इनकी पूँछ पतली व लम्बाई में छोटी होती है। इन भेड़ों का सर्वाधिक भाग ऊन से ढका रहता है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार क्रमशः 35–40 व 25–30 कि. ग्रा. होता है। नर व मादा पशुओं की औसत लम्बाई क्रमशः 65 व 64 से. मी. होती है। इन भेड़ों के मेमनों का जन्म भार 2.6–3.4 कि. ग्रा. होता है। इनसे प्राप्त ऊन सफेद व मध्यम से निम्न (खुरदरी) किस्म की होती है। एक भेड़ से वर्ष में औसतन 1.6–2.4 कि. ग्रा. ऊन प्राप्त होती है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 7–9 से. मी., तन्तु का व्यास 30–40 माईक्रॉन तथा मेडूलेशन 35–45 प्रतिशत होता है। इनकी ऊन में चिकनाहट अन्य नस्लों की ऊन से अधिक होता है। इस नस्ल की मादा 17 तथा नर 18 माह की आयु में प्रजनन योग्य हो जाते हैं।

## सोनाड़ी

इस नस्ल की भेड़े राजस्थान के उदयपुर, डूंगरपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ तथा गुजरात के उत्तरी भागों में पाई जाती है। इस नस्ल की भेड़ों का शरीर लम्बा, सुदृढ़ ऊँचा तथा गर्दन लम्बी होती है। इन भेड़ों का चेहरा सफेद या गले तक हल्के भूरे रंग का होता है। इन पशुओं के कान लम्बे (15–20 से. मी.) तथा लटके हुए होते हैं, जो चरते समय धरती पर रेंगते हैं। इनकी टाँगे लम्बी होती हैं, जिन पर ऊन नहीं होती। दोनो लिंगों में सींग नहीं होते हैं। इनकी त्वचा का रंग सफेद होता है तथा पूँछ पतली व लम्बी होती है। इन भेड़ो का सर्वाधिक भाग ऊन से ढका रहता है। इस नस्ल के नर व मादा का औसत शारीरिक भार क्रमशः 35–40 व 26–30 किग्रा. होता है। नर की लम्बाई 66–70 एवं ऊँचाई 68–71 से. मी. के मध्य होती है। मादा पशुओं की लम्बाई 58–62 तथा ऊँचाई 60–62 से. मी. तक होती है। इनसे प्राप्त ऊन सफेद तथा बहुत ही निम्न श्रेणी की खुरदरी एवं बालनुमा होती है। इनसे वर्ष में औसतन 0.8–1.3 कि. ग्रा. तक ऊन प्राप्त होती है। इनसे प्राप्त ऊन के तन्तु की लम्बाई 4.5–6.0 से. मी., तन्तु का व्यास 50–55 माईक्रॉन तथा मेडूलेशन 82 प्रतिशत से अधिक होता है। राजस्थान की यह भेड़ अन्य नस्ल की भेड़ों से अधिक दुधारू है। भेड़ें प्रतिदिन लगभग 1.0–1.5 कि. ग्रा. दूध देती है। दूध में वसा अधिक होता है, जिससे इनके मेमने शीघ्र बड़े होते हैं। भेड़ें 12 व मेढ़े10 माह की आयु में प्रजनन योग्य हो जाते हैं।

## पूगल

इस नस्ल का उद्‌भव राजस्थान के बीकानेर जिले के पूगल क्षेत्र में हुआ, जिसके नाम पर इसका नाम पूगल रखा गया। पूगल क्षेत्र से यह नस्ल पूरे बीकानेर एवं जैसलमेर जिलों में फैल गई। कुछ संख्या में यह नस्ल नागौर तथा जोधपुर में भी पाई जाती है। इस नस्ल की भेड़ों की शारीरिक बनावट सुदृढ़ एवं कद मध्यम होता है, इनका चेहरा काला तथा जबड़े का रंग भूरा होता है, जोकि नीचे गर्दन तक फैला रहता है। इस नस्ल की भेड़ों के नाक के दोनों ओर से आँखों के ऊपर तक भूरी धारियों का घेरा होता है जो इस नस्ल की मुख्य पहचान है। इनके कान छोटे, पूँछ पलती एवं मध्यम से छोटी लम्बाई

की होती है। पशुओं की टाँगें मध्यम लम्बाई की तथा खुर काले रंग के होते हैं। इनकी त्वचा का रंग सफेद होता है। इस नस्ल के नर व मादा का औसत शारीरिक भार क्रमशः 30–34 तथा 25–30 किग्रा. होता है। पशु की औसत लम्बाई तथा ऊँचाई क्रमशः 66–70 तथा 62–66 सेमी. होती है, जबकि मादा में क्रमशः 62–67 एवं 60–64 से. मी. होती है। नर 15 व मादा 18 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाते हैं। मेमनों का जन्म भार 2.4–3.0 कि. ग्रा. होता है। इनकी ऊन मध्यम श्रेणी की तथा सफेद रंग की होती है। भेड़ो का वार्षिक ऊन उत्पादन 1.5–2.2 कि. ग्रा. होता है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 5.0–6.5 से. मी., व्यास 32–38 माईक्रॉन तथा मेडूलेशन 58–65 प्रतिशत होता है।

## जैसलमेरी

इस नस्ल का नाम राजस्थान के जैसलमेर जिले के नाम पर रखा गया है जो कि इस नस्ल का जन्म स्थान है। यह नस्ल जैसलमेर के अलावा जोधपुर तथा बाड़मेर जिलों के पश्चिम सीमाओं पर भी मुख्य रूप से पाई जाती है। राजस्थान की अन्य सभी भेड़ नस्लों से यह बड़े आकार की होती है। इनकी शारीरिक बनावट सुदृढ़, हृष्टपुष्ट एवं वर्गाकार होती है। इन पशुओं का सिर कुछ बड़ा तथा नाक रोमन प्रकार की होती है। इन पशुओं का चेहरा काला अथवा गहरे भूरे रंग का होता है तथा यह रंग गर्दन के नीचे आधे भाग तक फैला रहता है। इनके कान लम्बे तथा खम्बदार लटके हुए होते हैं। इन भेड़ों के सींग नहीं होते हैं। पूँछ मध्यम से लम्बे आकार की होती है जिसकी लम्बाई 28 से. मी. होती है। इस नस्ल के नर एवं मादा पशुओं का औसत शारीरिक भार 32–38 तथा 28–34 कि. ग्रा. तक होता है। नर पशु की औसत लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 62–68 व 58–65 से. मी तथा मादा पशुओं की लम्बाई तथा ऊँचाई क्रमशः60–66 व 56–62 से. मी. होती है। नर व मादा क्रमशः 16 व 20 माह में प्रजनन योग्य हो जाते हैं। इनसे प्राप्त ऊन सफेद व मध्यम से उत्तम श्रेणी की होती है। वर्ष में इन भेड़ों से लगभग 1.4–2.6 कि. ग्रा. ऊन प्राप्त होती है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 6–9 से. मी., व्यास 32–39 माईक्रॉन तथा मेडूलेशन 60–70 प्रतिशत तक होता है।

## खेरी

भेड़ों की यह नस्ल राजस्थान के भेड़ पालकों द्वारा काले मुँह की (मारवाड़ी/जैसलमेरी) भेड़ों की देशी (मालपुरा) भेड़ों से निष्क्रमण के दौरान संकरण से उत्पन्न हुई है। भेड़ पालकों के अनुसार इस नस्ल की उत्पत्ति का कारण काले मुँह की भेड़ों में निष्क्रमण क्षमता अधिक होना है। अकाल व चराई के लिए अधिक दूरी तक चलने में इस तरह की भेड़ें सक्षम रहती है। अतः खेरी नस्ल की भेड़ें मारवाड़ी तथा जैसलमेरी भेड़ों के निष्क्रमण मार्गों जैसे किंपाली, जोधपुर, नागौर, अजमेर, टोंक, सवाई माधोपुर तथा करौली आदि में अधिकता से पाई जाती है। खेरी भेड़ों का शरीर सुगठित तथा मजबूत होता है।

इनके कान लम्बे तथा लटके हुए होते हैं। इन भेड़ों का चेहरा काले रंग का होता है। इनकी आँखों के आस–पास काले धब्बे तथा माथे पर सफेद धारियाँ भी पाई जाती हैं। इन भेड़ों में सींग नहीं होते तथा इनकी पूँछ पतली व मध्यम लम्बाई की होती हैं। वयस्क नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 35–40 तथा 26–30 कि. ग्रा. होता है। इनके मेमनों का जन्म भार 2.8–3.5 कि. ग्रा. के मध्य होता है। इन भेड़ों से प्राप्त ऊन सफेद रंग की तथा मध्यम श्रेणी की होती है। भेड़ो से प्रतिवर्ष 1.2–1.8 कि. ग्रा. ऊन प्राप्त होती है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 5–7 से. मी., व्यास 35–40 माईक्रॉन तथा मेडूलेशन 60–70 प्रतिशत होता है। इन भेड़ों से मालपुरा नस्ल की अपेक्षा कम दूध होता है, जिससे इनके मेमनें की वृद्धि दर मालपुरा नस्ल के मेमनों की अपेक्षा धीमी होती है।

☆☆☆☆☆

# पशुओं का उचित रख–रखाव

*देवव्रत सिंह*

*पशुधन उत्पादन प्रबन्ध विभाग*

*पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, गो. ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर (उत्तराखण्ड)*

भारतवर्ष में पशु पालन प्रमुखतयः दुग्ध व्यवसाय हेतु किया जाता है। दुग्ध व्यवसाय के लिए पशुपालक गाय तथा भैंसें पालते हैं। विभिन्न परिस्थितियां जैसे वातावरण, जलवायु, क्षेत्र, संसाधन एवं बाजार की उपलब्धता को देखते हुए पशु प्रजाति का चुनाव एवं उनकी संख्या का आंकलन किया जाता है। दुग्ध व्यवसाय में अधिकाधिक लाभ प्राप्ति हेतु गाय को 12 महीने में तथा भैंस को 12–14 महीने के अंतराल से एक स्वस्थ एवं उत्तम नस्ल के बच्चे को जन्म देना चाहिए। गौ–भैंस वत्स का पालन इस प्रकार हो कि वह 3–3.5 वर्ष (गाय) तथा 3.5–4 वर्ष (भैंस) की उम्र में प्रथम बार ब्याह सके। इन उद्देश्यों के साथ–साथ प्रत्येक प्रकार के पशुओं का स्वस्थ रहना एवं उनकी लगातार उचित वृद्धि भी अत्यधिक आवश्यक है, जिनकी प्राप्ति हेतु पशुपालक को सामान्य पशु प्रबंधन के निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए।

## पशुओं की पहचान

एक कुशल पशु प्रबंधन के लिए प्रत्येक पशु की पक्की पहचान रखना बहुत जरूरी है। पशु की पहचान के लिए उनके कान में टैग या उनके शरीर पर नम्बर लगाया जा सकता है। किसी भी पशु पहचान की विधि उपयोगी होने के लिये उस पर लगे हुए निशान को आसानी से लम्बे समय तक दिखने वाला होना आवश्यक है।

## मानकों का तय करना

एक कुशल प्रबंधन के लिए प्रत्येक मानक को तय करना चाहिए, जैसे– मृत्यु दर, जन्म दर, प्रथम ब्याहने की उम्र इत्यादि। ऐसा करने से पशु पालक समय का सदुपयोग कर सकते है; उनके निरीक्षण एवं निर्णय लेने की क्षमता में सुधार होता है, जिससे उत्पादन लागत में कम खर्च आता है।

## आवास व्यवस्था

पशुओं को वातावरण के प्रकोप से बचाने के लिए आवास की आवश्यकता पड़ती है। भारत में पशुओं की आवास व्यवस्था पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। व्यवस्थित पशुधन फार्मों पर ही समुचित आवास व्यवस्था देखने को मिलती है। पशुधन प्रबंध में पशुओं की आवास व्यवस्था का सबसे अधिक महत्व है। सुनियोजित एवं पर्याप्त आवास व्यवस्था के बिना पशुओं का दक्ष प्रबंध अधूरा ही रह जाता है। आवास व्यवस्था की अनुपयुक्त योजना से जहां धन तथा श्रम का दुरूपयोग होता है, साथ ही साथ वहां लाभ भी कम होता है। पशुओं की समुचित आवास व्यवस्था हेतु निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक होगा।

**आवास स्थल–** पशु आवास स्थल का सही चुनाव करने से हमेशा के लिए धन तथा समय की काफी बचत होती है। आवास स्थल शहर या बाजार के नजदीक होने से उत्पादों की बिक्री में सुविधा होती है साथ ही साथ विभिन्न पदार्थों के स्थानान्तर एवं आवागमन पर होने वाले खर्च एवं समय में भी बचत होती है। लगातार स्वच्छ एवं समुचित मात्रा में पानी का स्रोत आवास व्यवस्था के निकट होना चाहिए। ऊंची, समतल और उपजाऊ भूमि, तालाब–नदी से दूरी तथा उचित जल निकास की व्यवस्था से चारा उत्पादन तथा पशु स्वास्थ पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। आवास स्थल मुख्य सड़क से थोड़ा हटकर (300–500 मी.) दूर होने से यातायात की अशान्ति तथा दुर्घटनाओं से बचाव में मदद मिलती है। आवास व्यवस्था पर सतत् बिजली की उपलब्धता से विभिन्न कार्यों के समुचित सम्पादन में मदद मिलती है। पशु आवास के चारों तरफ अधिकाधिक संख्या में पेड़ हों जिससे तेज हवा, आदि से बचाव रहे।

**आवास भवनों का खाका–** पशु आवास भवनों का खाका वहां पर रहने वाले पशुओं की अधिकाधिक संख्या पर निर्भर करता है। यह बिन्दु इसलिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें बाद में फेर–बदल करना मुश्किल होता है। पशुशाला एवं बार–बार प्रयोग में आने

वाली इमारतों को केन्द्र में स्थित आंगन के चारों तरफ इस प्रकार बनाना चाहिए कि उन पर पशुपालक के घर से आसानी पूर्वक निगरानी की जा सके। बड़े पशु आवासों का नमूना अंग्रेजी के C, E, I, L या U के आकार का होना चाहिए। उनकी लम्बी अक्ष रेखा शीत प्रदेशों में उत्तर से दक्षिण तथा गर्म प्रदेशों में पूर्व से पश्चिम में रखने से पशु शाला में प्रकाश और हवा का काफी अच्छा प्रवेश रहता है। पशुओं के आवास स्थल तथा कार्यकर्ताओं के आवास में वायु की दिशा का भी ख्याल रखना चाहिए, जिससे पशुशाला की गंध इत्यादि से बचा जा सके।

**आवास भवनों का विन्यास–** पशुओं के आवास की संख्या अधिक होने पर उनको इस तरह नियोजित करें कि जिससे विभिन्न स्थलों पर जाने में कम से कम समय लगे। साथ ही साथ वे इतने नजदीक भी न हो कि आग लगने पर दूसरे आवास उसकी चपेट में आ जाये। सामान्यतः बड़ी पशुशालाओं के बीच में लगभग 25 मी. की दूरी होनी चाहिए। उपलब्ध जगह का सही उपयोग करने के लिए पूरे प्रांगण को गोलाकार आकृति प्रदान करना कार्यक्षमता को सुगम बनाने में सहायक होता है।

**आवास भवन की विशेषताऐं–** आवास भवन सस्ते, मजबूत, आकर्षक और टिकाऊ होने चाहिए। उनका निर्माण धूप तथा तेज हवाओं के बचाव में सहायक होना चाहिए। उनका डिजायन ऐसा हो कि पूरे प्रांगण का अवलोकन आसानी से किया जा सके और श्रमिकों का समुचित लाभ भी उठाया जा सके। अलग–अलग प्रकार के पशुओं के लिए अलग–अलग बाड़े होने चाहिए। आवास में पशुओं के उठने–बैठने तथा आराम करने के लिए पर्याप्त तथा सुविधाजनक स्थान होना चाहिए। पशु आवास में प्रचुर मात्रा में ताजी हवा व रोशनी का प्रबंध होना आवश्यक है। आवास भवन साफ सुथरे एवं सूखे होने से पशु स्वास्थ्य अच्छा रहता है, जिससे उत्पादन की लागत का कम खर्च होता है। डेरी भवन मजबूत और आकर्षक होने के साथ–साथ धूप और तेज हवाओं के बचाव में सहायक होने चाहिए। उनके डिजाइन सादे व सरल हों, जिससे उनकी लागत पर कम खर्च आये। सभी मकानों का मुख्य द्वार सड़क की तरफ होना चाहिए।

**आवास प्रणाली–** इस मुददे के प्रभावी विचार हेतु आवास में रखे जाने वाले पशुओं की संख्या, श्रमिकों की उपलब्धता एवं अपनाई जाने वाली कार्य प्रणाली को ध्यान में रखना चाहिए। भारतवर्ष में पशुओं के रखने की दो विधियां अपनाई जाती हैं।

बन्द घर प्रणाली में पशु बन्द मकानों में बांधकर रखे जाते है। उनके व्यायाम के लिए मकानों के साथ जगह छोड़ी जाती है। ऐसे घरों को बनाने में अधिक लागत लगती है। तथा उनमें चारा–पानी और स्वच्छता पर भी अधिक व्यय होता है। पशु समुचित व्यायाम से भी वंचित रहते है। यह प्रणाली ठंडे प्रदेशों के लिए उपयुक्त है। मुक्त घर प्रणाली में पशु खुले रखे जाते है। वे आवश्यकता अनुसार चारा–पानी लेकर घूमते हुए आराम करते हैं। शक्तिशाली पशु कमजोर पशुओं को परेशान करते है। परंतु आवश्यकता पड़ने पर अधिक पशुओं को भी ऐसे आवासों में बांधा जा सकता है। यह प्रणाली सादी तथा कम खर्च वाली हैं तथा प्रायः उष्ण या शीतोष्ण प्रदेशों में दिखाई देती है।

कुछ पशुपालक अपनी गायों को हमेशा खुला रखते है तथा अन्य उन्हें कुछ समय के लिए बांधकर रखते है। बड़े चरागाहों में पशु मुक्त स्वभाव से भी घूमते रहते है। कभी–कभी पशु एक ही स्थान पर रखे जाते है। जहां पर उनका चारा–पानी एवं दुहान होता है। मिल्क पार्लर प्रणाली में पशुओं को दुहान के लिए एक अन्य साफ सुथरी जगह पर ले जाया जाता है, इससे स्वच्छ दूध उत्पादन में मदद मिलती है।

लगभग बीस गायों की संख्या तक पशुपालक उन्हें एक ही लाइन में बांध सकते है। ऐसे घरों में चारे का स्थान आवास की लम्बाई में एक तरफ बनाया जाता है और दूसरी तरफ सफाई, दुहान एवं व्यायाम के लिए जगह होती है। पशुओं की अधिक संख्या होने पर उन्हें एक ही छत के नीचे दो लाइनो में बांधा जाता है। यह दो प्रकार से संभव है। प्रथम तो दोनों लाइनों में पशुओं के सिर एक दूसरे के आमने सामने होते हैं तथा बीचों–बीच में चारा खाने का स्थान होता हैं। आवास की लम्बाई में दोनों तरफ सफाई, दुहान एवं व्यायाम के लिए जगह होती है। दूसरे प्रकार में दोनों लाइनों में पशुओं की पूंछे एक दूसरे की तरफ आवास के बीच में होती है। प्रत्येक लाइन के लिए अलग–अलग चारा खाने का स्थान भवन की लम्बाई में दोनों तरफ होता है। भवन के बीचों बीच में सफाई तथा दुहान के लिए जगह होती है। पशुओं के स्वास्थ्य, रखरखाव एवं कार्य की सरलता के लिए यह विधि श्रेष्ठ है।

किसी भी पशु आवास में आवास के विभिन्न भाग और उनके गुण–निम्न रूप से पाये जाते हैं:

**फर्श–** पशु आवास में फर्श का महत्वपूर्ण स्थान है। यह मजबूत, टिकाऊ, आरामदायक, गढ्ढ़ा रहित, फिसलन रहित तथा थोड़ा ढाल (1:40) लिए होना चाहिए, जिसे आसानी से साफ तथा सूखा रखा जा सके।

**दीवार–** सामान्यतः इन्हें छत तक की बराबर ऊंचाई तक बनाने की आवश्यकता नहीं होती है। इन्हें लगभग चार से पांच फीट ऊंचा ही बनाना चाहिए। शेष ऊंचाई के लिए खम्भों का प्रयोग किया जा सकता है। दीवार की मोटाई लगभग एक फीट रखनी चाहिए, और उससे अच्छी प्रकार प्लास्टर कर देना चाहिए।

**छत–** इसे हल्का, मजबूत, टिकाऊ तथा वातावरण की गर्मी–सर्दी के प्रति उदासीन होना चाहिए। सामान्यतः इसे टिन या ऐस्बेस्टास से बना एवं झोपड़ीनुमा स्वरूप का होना चाहिए। इसकी ऊंचाई मध्य में लगभग 14–16 फीट तथा किनारों पर लगभग 8–10 फीट होनी चाहिए।

**चारा स्थल–** यह पशुओं की संख्या के आधार पर भवन की लम्बाई में बनाना चाहिए। प्रत्येक पशु के लिए लगभग 3 फीट की लम्बाई और 2 फीट की चौड़ाई नियत करें। इसकी अन्दर की ऊंचाई लगभग 1.5–2.0 फीट तथा गहराई 1.0 फीट हो, जो कि अन्दर से गोलाईनुमा आकार की हो। साफ सफाई के लिए चारा स्थल में एक पानी के निकास का छेद बनाऐं।

**पशुस्थल–** इसे पशु चारा खाने एवं बैठने के समय उपयोग में लाता है। कहीं –कहीं पशु स्थल पर दोहान भी किया जाता है। इसकी माप 4×6 फीट की होनी चाहिए।

**सफाई नालियां–** पशु स्थल के पीछे आवास की लम्बाई में लगभग एक फुट चौड़ी सफाई नालियां बनानी चाहिए। इनका ढाल आवास के एक किनारे से दूसरे किनारे की तरफ 1:40 में होना चाहिए।

**दुहान रास्ता–** सफाई नाली के पीछे लगभग 4–5 फीट चौड़ा एक रास्ता होना चाहिए। जिसमें विभिन्न साधनों को लाया ले जाया जा सके।

**गेट–** पशु आवास में दोनों तरफ गेट होने चाहिए जिनकी चौड़ाई और ऊंचाई लगभग 8 फीट हो। इनके किनारे गोल हों जिससे पशुओं को चोट न पहुंचे। दरवाजे को मजबूत, टिकाऊ और सरलता से उपयोग में लाने वाला होना चाहिए।

**खुला स्थान (पैडक)–** पशुओं के अच्छे स्वास्थ के लिए उन्हें सामान्य व्यायाम की आवश्यकता होती है। इसके लिए उनके बांधने की जगह के साथ–साथ खुली जगह का भी होना आवश्यक है। अनुपात में खुली जगह बांधने की जगह की तुलना में दुगुने से अधिक होनी चाहिए। इस खुली जगह में पशु व्यायाम के साथ–साथ सूर्य की रोशनी भी प्राप्त करते है, जो उनके स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। तेज गर्मी से बचाव हेतु खुले स्थल में कुछ छायादार वृक्षों का होना भी नितांत आवश्यक है। सतत् स्वच्छ एवं प्रचुर मात्रा में पानी की उपलब्धता के लिए नांद भी खुले स्थान में बनाई जाती है।

**तालिका 1: विभिन्न प्रकार एवं आयु वर्ग के डेरी पशुओं के लिए आवासीय आवश्यकताएँ**

| पशुओं की किस्म | स्थान की आवश्यकता (वर्ग मी.) | | एक साथ रखे जा सकने वाले पशुओं की संख्या | छत की ऊंचाई (सें. मी.) |
|---|---|---|---|---|
| | छतदार स्थान | खुला स्थान | | |
| सांड | 12.0 | 120.0 | 1 | 175–220 |
| गाय | 3.5 | 7.0 | 50 | |
| भैंस | 4.0 | 8.0 | 51 | |
| गाभिन गाय या भैंस | 12.0 | 12.0 | 1 | |
| छोटे बच्चे | 1.0 | 1.0 | 30 | |
| बड़े बच्चे | 2.0 | 4.0 | 30 | |

ग्राम्य परिस्थितियों में पशुपालक अक्सर कम पशु पालते हैं। उनके आवास की व्यवस्था पशुपालक के पास धन की उपलब्धता पर निर्भर करती है। पशुपालक अपने पशुओं को अधिकतर कच्चे घरों में और कभी–कभी पक्के घरों में भी रखते है। प्रत्येक परिस्थिति में पशु को वर्षा, ठंड, गर्मी, लू और तेज हवाओं से बचाने का प्रबंध करना चाहिए। छत की ऊंचाई लगभग 12 फीट रखनी आवश्यक है। मकानों के चारों तरफ छायादार वृक्ष लगा देने से वातावरण के प्रकोप से बचा जा सकता है। पशु घर को ऊंचे स्थान पर बनाने से उनकी साफ–सफाई रखने मे मदद मिलती है। प्रत्येक वर्ग के पशु के लिए आवास की आवश्यकता तालिका में दिये गये विवरण के अनुसार ही करनी चाहिए।

पशुओं के उचित प्रबंध के लिए वयस्क पशु एक घर में होने चाहिए। दूध देने वाली और बिना दूध की गाय/भैंस अलग–अलग हों। छोटे–छोटे बच्चों को 3 माह के अन्तर के वर्ग बनाकर अलग–अलग रखना चाहिए। अधिक पशु एक साथ नहीं रखने चाहिए अन्यथा आपसी टकराव अधिक होता है तथा रोग शीघ्र फैलते है। रोगी तथा जल्दी ब्याने वाली मादा को अलग रखना चाहिए। पशुओं को चारा प्रतिदिन दो–तीन बार डालना चाहिए। एक साथ ही कई दिन के लिए चारा नहीं डालना चाहिए। चारे की नालियों को गर्मी में दो बार तथा सर्दी में एक बार अवश्य साफ करना चाहिए। फर्श को कम से कम समय के लिए गीला रखना चाहिए। पशुओं के समुचित व्यायाम की व्यवस्था उनके अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

## समुचित पानी का प्रबंध

पशुओं को लगातार प्रचुर मात्रा में स्वच्छ जल की प्राप्ति का प्रबंध होना चाहिए। पानी शरीर का एक महत्वपूर्ण अवयव है। इसकी कमी से भोजन के पाचन में अड़चन पड़ती है, शरीर सुस्त रहता है, गर्मी–सर्दी अधिक महसूस होती है तथा बढ़ोत्तरी कम होती है। इसलिये कुशल पशुपालक अपने पशुओं के लिए पानी का प्रबंध इस प्रकार करते हैं जिससे उन्हें मनचाहे समय पर वांछित जल प्राप्त हो सके।

## समुचित व्यायाम का प्रबंध

मनुष्य की भांति पशु को भी व्यायाम की आवश्यकता होती है। नवजात वत्स स्वयं ही अपना व्यायाम कर लेते है। परंतु इसके लिए उन्हें खुले रखना आवश्यक है। इसी प्रकार भार वाहक पशु भी कार्य के दौरान अपना व्यायाम कर लेते हैं। वयस्क पशु जैसे गाय और भैंस को भी व्यायाम की आवश्यकता है। इस के बिना पशु सुस्त रहता है, चारा कम खाता है, दूध भी कम देता है, उसके खुर बढ़ जाते हैं, पैरों के जोड़ कड़े हो जाते हैं और गाभिन पशुओं में ब्याने के समय कठिनाई हो सकती है। इसलिए वयस्क पशुओं को भी कुछ समय के लिए खुला छोड़ना या चारागाह में भेजना उनके स्वास्थ्य में सहायक है।

## समुचित प्रकाश स्नान

व्यायाम की भांति पशुओं को सूर्य के प्रकाश में रखना उनके स्वास्थ के लिए आवश्यक है। नवजात वत्सों के लिए सूर्य प्रकाश नितांत आवश्यक है। उन्हें प्रातःकाल लगभग दो घंटे के लिए सूर्य की रोशनी में रखकर मालिश करनी चाहिए। इससे उनके शरीर में विटामिन डी का संश्लेषण होता है और हड्डियां मजबूत बनती हैं।

## शरीर मालिश और नहलाना

प्रत्येक वर्ग के पशुओं के लिए शरीर मालिश का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। शरीर मालिश साफ–सूखे–मोटे सूती कपड़े, ब्रश या हाथ से की जा सकती है। मालिश करने से त्वचा पर लगी हुई गंदगी दूर होती है, रक्त संचार बढ़ता है, वाह्य परजीवी गिर जाते है और त्वचा पर लगी हुई चोट इत्यादि का भी पता चल जाता है। पशु स्वयं को ताजा महसूस करता है, उसकी भूख बढ़ जाती है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है।

भैंस प्रजाति के पशु विशेषकर गर्मी के मौसम में पानी में रहना अत्यंत पसंद करते है। अतः उनके लिए एक उपयुक्त स्थान पर तालाब की व्यवस्था रखना लाभदायक है। तालाब का पानी हमेशा स्वच्छ रहना चाहिए तथा उसमें बीमार पशुओं को घुसने से रोकना चाहिए।

## बिछावन बिछाना

पशुओं को ठंड के मौसम में बिस्तर लगाना अति आवश्यक है। उनकी बिछावन के लिए सूखा पुआल, गन्ने की पत्तियां, भूसा इत्यादि काम में लाया जा सकता है। बिछावन की मोटाई लगभग आधा फुट होनी चाहिए। बिछावन को रोजाना उलट–पलट करना जरूरी है। गीले और गंदे बिछावन को फैंकना और उसकी जगह नया बिछावन लगाना पशुओं को आराम प्रदान करता है तथा ठंड में होने वाली विभिन्न बीमारियों से भी बचाव करता है।

## कीटों से बचाव

वर्ष के कुछ महीनों में जब मौसम आर्द्र और गर्म होता है तब मक्खी, मच्छर और अन्य कीट पशुओं को अत्यधिक बैचेन रखते हैं। ऐसा होने पर पशु आराम से वंचित रहता है, चारा कम खा पाता है और उत्पादन कम करता है। कुछ मक्खियां विभिन्न प्रकार के जानलेवा रोग भी फैलाती हैं। इन से बचने के लिए पशुओं को सूखे और ऊंचे स्थान पर बांधना चाहिए। उनके गोबर इत्यादि को दूर फेकना चाहिए तथा कीट नाशक दवाइयों का प्रयोग भी करना चाहिए। सूखी हुई नीम की पत्तियों का धुआं करना भी इस समस्या के समाधान में सहायक होता है।

## स्वच्छता एवं सफाई

स्वच्छता एवं सफाई की उचित व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे पशुओं को बहुत सी बीमारियों से बचाया जा सकता है। स्वच्छता के कुशल सम्पादन हेतु आवास भवनों एवं उनके आस–पास रोशनी का समुचित प्रबंध होना आवश्यक है। सफाई को एक नियमित क्रम के रूप में करने से आसानी रहती है। पशुशाला में एकत्र हुए गोबर इत्यादि को दूर फेकनें का प्रबंध होना चाहिए। पशुशाला में नीम जैसे वृक्षों के होने से सफाई और वातावरण को शुद्ध रखने में मदद मिलती है।

## वाह्य पशुओं से बचाव

वाह्य पशु जैसे कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, सुअर, सियार और लोमड़ी इत्यादि को पशुशाला में घुसने या उसके इर्द–गिर्द घूमने से रोकना चाहिए। ऐसे पशु विभिन्न प्रकार की बीमारियों को फैलाते हैं। साथ–साथ नये पशुओं के आगमन पर उन्हें तुरंत पशुशाला में दूसरे पशुओं के संपर्क में आने से रोकना चाहिए। नये पशुओं को लगभग एक माह तक एक दूर स्थान पर रखकर अच्छी तरह निगरानी रखनी चाहिए।

## गो–भैंस वत्स का पालन

गो–भैंस वत्सों को उनकी मां का खीस और दूध अवश्य पिलाना चाहिए। परंतु इसके लिए उन्हें मां के थन से पिलाना आवश्यक नहीं है। कुशल प्रबंध हेतु वत्सों को मां से दूर रखा जाता है और उन्हें उनकी उम्र और शरीर और वजन के अनुरूप ही दूध देना चाहिए। ऐसा करने से हमें गाय–भैंस के कुल दूध उत्पादन का भी पता चल जाता है। साथ ही साथ वत्सों को भी उचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। वत्सों को वाह्य एवं आंतरिक परजीवियों से बचाने के लिए कृमिनाशक दवाइयों का प्रयोग करना आवश्यक है।

## शारीरिक वृद्धि की जानकारी

पशु पालक को चाहिए कि वह अपने पशुओं की शारीरिक वृद्धि की नियमित जांच करें। इसके लिए उसे अपने पशुओं का वजन लेते रहना चाहिए। वत्सों में शरीर के वजन को प्रत्येक माह के अंतराल पर नापा जा सकता है। बड़े होने पर यह अन्तराल तीन से छः माह हो सकता है। वजन करने की सुविधा न होने पर उनके सीने की माप कर सकते हैं, जोकि शारीरिक वृद्धि का अच्छा परिचायक है। पशुओं को अच्छी खुराक करने एवं प्रजनन हेतु भी उनके शारीरिक वजन का अनुमान होना आवश्यक होता है।

## खुरों की देखभाल

कुछ पशुओं में खुरों के तेजी से बढ़ने की आदत देखी गयी है। कुशल पशु प्रबंध न होने पर पशुओं के खुर बढ़ जाते हैं जो उन्हें चलने, चारा इत्यादि खाने में परेशान करते है तथा साथ ही में विभिन्न खुरों की बीमारियों को जन्म देते हैं। इसलिए पशुओं को थोड़े समय के लिए कच्चे स्थान पर रखना और चारागाह में भेजना अति आवश्यक है।

## अभिलेख रखना

पशुओं के ऊपर आये विभिन्न खर्च, आमदनी एवं विभिन्न कार्यकलापों का लेखा–जोखा रखना अति आवश्यक है। ऐसा करने से पशु पालक को उचित समय पर उचित निर्णय लेने में मदद मिलती है तथा पशुओं की उत्पादकता का भी पता चलता है।

## नियमित दिनचर्या

प्रत्येक वर्ग के पशुओं को एक नियमित दिनचर्या पसंद होती है। उनको विभिन्न कार्य जैसे चारा डालना, सफाई करना, दूध दुहना, मालिश करना इत्यादि के लिए नियमबद्ध प्रणाली अपनानी चाहिए। इसी के साथ–साथ वे अपने चिर–परिचित पशु पालकों के द्वारा ही अपने विभिन्न कार्य करवाना पसंद करते हैं। ऐसा न होने पर वे उत्तेजित हो सकते हैं। जिससे पशुओं और पशुसेवकों को चोट आ सकती है।

## पशु बीमा

आजकल बहुत सी बीमा कंपनियाँ इस क्षेत्र में पशुपालकों की मदद के लिए अग्रसर है, जो काफी कम प्रीमियम पर पशुओं का बीमा करती हैं। कुछ गैरसरकारी संस्थायें भी पशुपालकों को इस क्षेत्र में मार्ग दर्शन करती हैं। पशुपालकों को चाहिए कि वे अपने प्रत्येक पशु का बीमा करायें जिससे दैवीय आपदा के समय उन्हें राहत मिल सके।

## दर्शकों को नियंत्रित करना

किसी भी पशुस्थल पर बाहर से आने वाले दर्शकों को नियंत्रित करना चाहिए। ऐसा प्रबंध करें जिससे दर्शकगण एक उचित दूरी से ही पशुस्थल का मुआयना कर सकें और वे पशु के सीधे संपर्क में न आ पायें। ऐसा करने से पशुपालक विभिन्न प्रकार की छूत की बीमारियों से अपने पशुओं को बचा सकते हैं।

## बेकार पशुओं का निष्कासन

एक अच्छी पशु आधारित अर्थव्यवस्था के लिए पशुपालकों को अपने पास से बेकार पशुओं का चयन करके निष्कासन करने की योजना को नियमित कार्यरूप देना चाहिए। साधारणतः पशुपालक ऐसा न करके अधिक धन प्राप्ति की लालच में अच्छे पशु को बेच देते है, जोकि लम्बे समय में नुकसानदायक सिद्ध होता है।

## निरीक्षण एवं परिवेक्षण

पशुओं के स्वास्थ्य एवं उनकी संख्या के बारे में समय–समय पर निरीक्षण करते रहना चाहिए। विभिन्न विशेषज्ञों की राय को उनके मतानुसार समय पर मान लेना चाहिए। इससे पशु प्रबंधन में मदद मिलती है, पशुओं का स्वास्थ्य अच्छा रहता हैं तथा उत्पादन में वृद्धि होती है।

☆☆☆☆☆

# भारतीय पशुधन की प्रमुख समस्या: बाँझपन के कारण एवं उनका निवारण

*नवनीत कौर [1], दीपक शर्मा [2], एस. पी. एस. सोमवंशी [3] एवं डी. के सदाना [4]*
[1] भारतीय पशु चिकित्सा, अनुसन्धान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली (उत्तर प्रदेश)
[2] राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[3] कृषि विज्ञान केंद्र, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, मंदसोर (मध्य प्रदेश)
[4] राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

पशुधन किसी भी राष्ट्र की सुख, समृद्धि एवं सम्पन्नता का स्रोत हैं। पशुधन के विकास की कहानी सदा से ही मानव जीवन के विकास की कहानी से जुड़ी हुई है। पशुधन का जहाँ सांस्कृतिक स्वरूप है, वहीं आर्थिक महत्ता भी है। वर्तमान में देखें तो हमारे देश में पशु प्रजनन सम्बन्धी समस्याएँ देश के पशुधन विकास में सबसे बड़ी बाधा हैं, जिसके कारण हमारा प्रति पशु उत्पादन अन्य देशों से पीछे रह जाता है।

## बाँझपन

बाँझपन नर व मादा दोनों प्रकार के पशुओं में हो सकता है। मादा–पशुओं में बाँझपन का अर्थ है गर्भ धारण न करना। रोगग्रसित मादा प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप से जननेंद्रिय में वीर्य डालने पर भी गर्भ धारण नहीं करती। बाँझपन अवस्था स्थायी या अस्थायी दोनों प्रकार की हो सकती है। स्थायी रूप से मादा–पशुओं में प्रजनन शक्ति का ह्रास होना बाँझपन कहलाता है। पशुधन में बांझपन विभिन्न कारणों जैसे कि पोषण, शारीरिक गड़बड़ी, आनुवंशिक और संक्रामक कारणों से हो सकता है। वास्तव में देखा जाये तो बाँझपन एक अकेली बीमारी न होकर अनेक कारणों का सम्मिश्रण है।

## बाँझपन के प्रकार एवं कारण

बाँझपन को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है:

**अ. अस्थायी बाँझपन:** इसमें पशुओं के गर्भ धारण न होने के कारणों का पता लगाकर चिकित्सा की जा सकती है एवं इसे दूर किया जा सकता है।

**ब. स्थायी बाँझपन:** इसमें पशु के इस रोग को दूर नहीं किया जा सकता है।

बाँझपन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

1. संरचना विकार– फ्री मार्टिन, अंगों की कमी, प्रजनन अंगों में विकार इत्यादि
2. दुर्घटना से उत्पन्न विकार
3. शारीरिक क्रिया सम्बन्धी विकार
   अ) हार्मोन असंतुलन
   ब) मद में न आना (एनइस्ट्रस):– अक्रियाशील अंडाशय, परसिस्टेंट कार्पस लयूटियम
   स) शांत ऋतुकाल
   द) सिस्टिक अंडाशय
4. पोषण में कमी या असंतुलन
5. बीमारियाँ जैसे ब्रुसुल्लोसिस, विब्रियोसिस, ट्राइकोमोनीइअसिस, लेप्टोस्पाइरोसिस द्वारा प्रजनन तंत्र के अंगों में विकार जैसे पायोमेट्रा, सर्विसाइटिस, मेट्राइटिस आदि।
6. आनुवंशिक कारकः प्रजनन संरचना/क्रिया में जन्मजात दोष

7. कुप्रबंधन एवं अन्य कारक जैसे ऋतुकाल का सही आंकलन न किया जाना एवं समयानुसार गर्भाधान न कराया जाना, पशु की अधिक आयु, ऋतु, तापक्रम, रोशनी आदि।

आमतौर पर पाया गया है कि गाँवों में गाय और भैंस की ओसरों में करीब 4 या 5 साल तक ऋतुमय अवस्था नहीं आती है। इस तरह ये पशु पहली ब्याँत होने तक 6 साल या इससे भी अधिक उम्र के हो जाते हैं। इन पशुओं की ओसरों का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं होता है। जो पशु स्वस्थ दिखते भी हैं उनमें भी करीब 4 या 5 साल तक गर्मी में आने के कोई लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। ऐसे पशुओं के जननांगों का परीक्षण करने पर पता चलता है कि जननांग या तो बिल्कुल परिवर्धित ही नहीं हुए होते हैं अथवा कम परिवर्धित हुए हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि पशु को बढ़ने की अवस्था में पूरा आहार और उसके प्रबंधन की तरफ ठीक तरीके से ध्यान नहीं दिया जाता। जो आहार दिया भी जाता है उसमें बहुत कम मात्रा में दाना होता है, जिसके कारण पशु के शरीर में प्रोटीन, खनिज लवण तथा विटामिनों की कमी होती जाती है। परिणामस्वरूप, पशु में काफी देर में जाकर तरूण अवस्था प्रारम्भ होती है। पशुओं का समय से मदचक्र में न आने के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम कारण पशु के गर्भाशय में कोई असामान्य रचना हो सकती है, जिससे पशु गर्मी में नहीं आता है या फिर गर्भ ठहरने के बाद शुरू के दिनों में ही भ्रूण की किन्हीं कारणों से मृत्यु हो जाये तो भी पशु गर्मी में नहीं आता है।

**शांत गर्मी (साइलेंट हीट):** कई बार पशु में गर्मी के लक्षण इतने तीव्र नहीं होते, जिससे पशुपालक उसे ऋतुमय अवस्था में समझें। ऐसी अवस्था को शांत गर्मी या साइलेंट हीट कहते हैं। ऐसे में पशुपालक यही समझते हैं कि पशु गर्मी में आया ही नहीं।

**मद में न आना (एनइस्ट्रस):** यह भारतीय पशुधन की प्रमुख समस्या है तथा इसका प्रमुख कारण है कि पशुओं के गर्मी मे आने का पता न लग पाना। एनइस्ट्रस के अन्य कारण जैसे डिम्बग्रंथि का विकास न हो पाना, एक या दोनों अंडाशय का अनुपस्थित होना। इन सबका प्रमुख कारण है गोनेड्ल रिज का सही से काम न करना। कभी–कभी एक अंडाशय के सही से काम न करने के कारण ये विकासरोध आंशिक भी हो सकता है। एनइस्ट्रस का सही निदान टटोलकर किया जा सकता है।

**जनन ग्रंथि का अल्प परिवर्धन (गोनेडल हाइपोपलासिया):** इसके प्रमुख कारण जैसे कि जब एक या दोनो अंडाशय सामान्य की तुलना में छोटे हो, बछड़े को दूध पिलाती गाय में ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन का निस्तारण कम होने के कारण चक्रीय गतिविधि कम हो जाना, ग्रीष्म ऊष्मा तनाव (समर हीट स्ट्रेस)। यदि 33.5 डिग्री सेल्सियस व 18.2 डिग्री सेल्सियस पर कामोंमाद अवधि की तुलना करें तो मद चक्र लम्बा, मद की अवधि कम और मद की तीव्रता कम हो जाती है।

**डिम्बग्रंथि शोष:** डिम्बग्रंथि शोष पोषण संबंधी समस्याओं से होता है और यह सबसे अधिक उच्च उत्पादन वाले पशुओं में देखा गया है।

**आवृति प्रजनन (रिपीट ब्रीडिंग):** पशुओं की प्रजनन क्षमता कम होने का एक अन्य मुख्य कारण है। पशु में कई बार गर्भाधान की आवश्यकता होती है। ऐसे पशुओं में सामान्यतः नियमित मदचक्र होता है, पशु के जननांगों से कोई मवाद नहीं आता तथा पशु को तीन या इससे भी अधिक बार गर्भाधान कराने पर गर्भ नहीं ठहरता। इसके भी दो मुख्य कारण हैं–

क) निषेचन का न होना

ख) भ्रूण की शीघ्र मृत्यु हो जाना

इस अवस्था के कई कारण हो सकते हैं जैसे–वंशानुगत से सम्बन्धित, शरीर के जननांगों की संरचना में कोई त्रुटि होना, हार्मोन का असंतुलन, अंडाणु या शुक्राणु में कोई त्रुटि, कुपोषण और कुप्रबन्ध इत्यादि। यदि भ्रूण की मृत्यु पशु के गाभिन होने के 8 से 16 दिन बाद होती है तो पशु के मदचक्र पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन अगर यह 16 से 25 दिनों के बाद होती है तो पशु के गर्मी में आने का अन्तराल बढ़ जाता है। अतः पशु पालकों को इस सम्बन्ध में अपने पशुओं की जाँच कराकर उचित इलाज कराना चाहिए।

**प्रबंधकीय कारण:** पशुओं की अधिक संख्या, आवासीय जगह की कमी, स्वच्छता की कमी आदि कारणों से भी मद में न आने की समस्या होती है। इसके अतिरिक्त अन्य कारण जैसे कि 66% गायों के मद के लक्षण शाम 6 बजे और सुबह 6 बजे के बीच दिखाई देते हैं तथा जिन गायों में मद की अवधि 12 घंटे से कम होती है। उनमें मदकाल ज्यादातर छूट जाता है। हाल के वैज्ञनिक परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि गर्मी के दिनों में अधिक गर्मी के कारण पशुओं की थाईराइड ग्रन्थि पर प्रभाव पड़ता है जो कि पशुओं कि पुनरुत्पादन क्षमता को सीधा प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त अपर्याप्त ताप, सूर्य की रोशनी की कमी तथा अन्य कुप्रबन्ध भी पशु प्रजनन पर बहुत गहरा प्रभाव डालते हैं। गन्दे तथा अंधेरे, बिना रोशनदान वाले पशुशाला पशु की प्रजनन क्षमता को सीधे प्रभावित करते हैं और उनके स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव डालकर उनमें अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप मादा–पशुओं की प्रजनन शक्ति में कमी आ जाती।

**पोषक तत्वों की कमी:** हमारे देश में प्रायः सन्तुलित आहार न मिलने के कारण लगभग 30 से 40 प्रतिशत पशु बाँझपन की अवस्था में आते हैं। पशु आहार में प्रोटीन, खनिज लवण एवं विटामिन्स की कमी से मादा पशु के जननांग पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाते। प्रायः देखा जाता है कि पशुपालक अपने पशुओं को संतुलित आहार नहीं खिलाते हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि पशु चाहे कितनी ही उन्नत नस्ल का क्यों न हो, उससे अधिकतम लाभ संतुलित आहार दिए बिना नहीं लिया जा सकता। प्रसवोत्तर पोषण प्रजनन के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। प्रसव के पूर्व व उपरान्त भोजन में कुल पाचन पोषक तत्व (टीडीएन) कम होने पर प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है। विटामिन 'ए' की कमी से भी पशुओं की प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है। इन पशुओं को रोजाना विटामिन 'ए' के इन्जेक्शन तथा खनिज लवण देकर इनकी कमी पूरी की जा सकती है। खनिज लवण देने से पशुओं के शरीर में कैल्सियम की भी आपूर्ति होती रहती है। विटामिन डी की कमी से डिंबक्षरण में देरी तथा मद के संकेतों में कमी आदि लक्षण दिखाई देते है। प्रयोगों द्वारा देखा जा चुका है कि जिन पशुओं में शरीर को आवश्यक ऊर्जा नहीं मिलती, उनमें गर्मी के लक्षण नहीं आते हैं। फास्फोरस की कमी के कारण पशुओं में देरी से तरूणाई अवस्था शुरू होती है तथा गर्मी के लक्षण बहुत कम परिलक्षित होते हैं। खून में फास्फोरस की मात्रा 3 मि. ग्रा. से कम होने पर इसकी कमी के लक्षण दिखने लगते हैं। पुनरूत्पादन के लिए पशु को 10 से 12 ग्राम फास्फोरस प्रतिदिन मिलना चाहिए। दुधारू पशुओं को फास्फोरस की कुछ ज्यादा आवश्यकता होती है।

डेयरी या पशुपालन तभी लाभकारी हो सकता है, जब गाय और भैंस नियमित रूप गाभिन होती रहें तथा प्रसव अन्तराल ज्यादा न हो। पशु ब्याने के पश्चात 90 दिनों के अन्दर फिर से गाभिन हो जाना चाहिये। ग्रामीण क्षेत्रों में पाया गया है कि पशु ब्याने के करीब 6 या 7 महीने तक तो गर्म ही नहीं होते है जिससे ब्यांत से गर्भ ठहरने का अन्तराल बजाय 90 दिनों के होने के कई महीनों तक का हो जाता है। इसके दो प्रमुख कारण हो सकते हैं, पहला कारण यह है कि पशुपालक नवजात बच्चे को रोजाना दूध दुहने से पहले पशु का दूध दो या तीन बार पिलाते रहते हैं। परिणाम स्वरूप पशु में गर्मी के लक्षण शीघ्र प्रकट नहीं होते। दूसरा कारण यह है कि पशुपालक जानबूझकर पशु को शीघ्र गाभिन कराना नहीं चाहते हैं क्योंकि उनमें यह धारणा है कि ऐसा करने पर पशु के दूध में कमी आ जायेगी। अतः यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि पशु को गर्मी में आने पर पशुपालक को उसे तुरन्त गाभिन करवाने के लिये ले जाना चाहिये।

## सावधानियाँ

1. प्रायः यह देखा गया है कि पशुपालक या तो बहुत शीघ्र अथवा पशु की गर्मी निकल जाने पर गाभिन कराने लाते हैं। ऐसे में ध्यान देने योग्य बात यह है कि अगर पशु शाम को गर्मी में आए तो अगले दिन सुबह और यदि पशु में गर्मी के लक्षण सुबह दिखाई पड़े तो उसी दिन शाम को गाभिन कराने के लिये ले जाना चाहिये।
2. पशु पालक अधिकतर पशु के गर्मी के लक्षण देखने से अनभिज्ञ रहते हैं। उन्हें रोजाना शाम तथा सुबह बिना किसी रूकावट के पशु में गर्मी के लक्षण देखने चाहिये।

3. भैंसो में जनन ऋतुकालिक होती है, गर्मी के दिनों में खासकर मई–जून के महीने तक भैंसों में गर्मी के लक्षण दिखाई नहीं पड़ते या बहुत ही अल्पकालिक तथा कम दिखाई देते हैं। पशुपालकों को इसके लिये अलग से निम्नलिखित व्यवस्था करनी चाहिये:

- आवास खुला होना चाहिये जिसमें छाया की व्यवस्था हो। पशु के बाड़े में गर्मी के दिनों में खस–खस की चटाई का उपयोग करना चाहिये।
- पशु को सुबह व शाम खूब नहलाना चाहिये तथा दोपहर की गर्मी के समय पास के किसी तालाब अथवा पोखर में लोटने देना चाहिए। पशु को सूरज की सीधी गर्मी से बचाना चाहिये।
- इस ऋतु में पशु को चारा या भूसा शाम या रात को अथवा बहुत सुबह दिया जाना चाहिए।
- हर समय स्वच्छ एवं पर्याप्त मात्रा में पानी पशु के लिए उपलब्ध होना चाहिए।
- ज्यादातर भैंसों में गर्म होने के लक्षण रात में स्पष्ट दिखाई देते हैं, अतः गर्मी के लक्षण देर शाम और सुबह ही देखे जाने चाहिए जिससे गूंगी हीट या साइलेंट हीट में आने वाले पशु भी गाभिन कराये जा सकते हैं।
- पशुओं के पोषण में अधिक ध्यान देना चाहिये, गर्मियों में पशुओं को हरे चारे की अथवा साइलेज की व्यवस्था अगर हो सके तो अवश्य करनी चाहिये।

## बाँझपन का निदान एवं उपचार

बाँझपन की समस्या के निदान एवं उपचार हेतु पशु चिकित्सक से परामर्श करना चाहिए। चूँकि बाँझपन एक संयुक्त कारणों से होने वाली बीमारी (अवस्था) है, अतः इसका कोई एक इलाज नहीं हैं। यदि रोग पोषाहार की कमी से है तो पशु को सन्तुलित आहार जिसमें प्रचुर मात्रा में प्रोटीन व खनिज लवणों का मिश्रण हों, दिया जाना चाहिये। यदि रोग का कारण हार्मोन का असन्तुलन या कमी है तो इसका निदान किसी योग्य पशु चिकित्सक से सलाह लेकर कराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त बाँझपन यदि जननेंद्रिय रोगों के कारण है तो भी समीपस्थ गर्भाधान केन्द्र जाकर पशु का उचित उपचार किया जा सकता है।

पशुपालकों को अपने पशुओं से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये उनके नवजात शिशु अवस्था से पशु के ब्याने तक तथा बाद में पुनः पशु के गाभिन होने तक उनके खान–पान, रहने की व्यवस्था आदि का पूरा–पूरा ध्यान रखना जरूरी है। इसके लिये अगर पशुपालक अपने पास प्रत्येक पशु का रिकार्ड रखें तो यह कुछ लाभकारी होता हैं, जैसे पशु के जन्म की तारीख, पशु के प्रथम बार गर्म होने तथा गाभिन होने की तिथि तथा पशु के प्रथम ब्याँत की तारीख और फिर पुनः गर्भ होने की दिनांक वगैरह।

☆☆☆☆☆

# पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान में होने वाली त्रुटियाँ एवं उनका निवारण

*संजय कुमार मिश्र एवं सर्वजीत यादव*
*उ. प्र. पं. दीन दयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)*

दुधारू पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान नैसर्गिक गर्भाधान की अपेक्षा अधिक सुरक्षित, उपयोगी एवं लाभदायक होने के बावजूद अधिकांश पशुपालकों द्वारा इस तकनीक को अपनाया नहीं जा रहा है। इस तकनीक की लोकप्रियता कम होने के विभिन्न कारणों में से एक मुख्य कारण इस तकनीक द्वारा गर्भधारण की दर का कम होना भी है। इस विधि द्वारा गर्भधारण दर का कम होना किसी तकनीकी कमी के कारण न होकर वरन कृत्रिम गर्भाधन कार्यकर्त्ताओं द्वारा अज्ञानतावश की जाने वाली त्रुटियां हैं।

वीर्य स्ट्रॉ को तरल नत्रजन पात्र से निकालने से लेकर वीर्य को पशु (गाय/भैंस) के प्रजनन अंग में डालने तक ऐसी क्रियायें हैं जिनको अगर समुचित ढंग से न किया जाए तो वीर्य की गुणवत्ता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे वीर्य में उपस्थित समस्त या अधिकांश शुक्राणु मृत होने या उनकी गतिशीलता कम हो जाने के कारण गर्भधारण की संभावना घट जाती है। अधिकांश कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता काम को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने के उद्देश्य से या कुछ क्रियाओं के महत्व को न समझने के कारण इन क्रियाओं तथा इनसे जुड़ी सावधानियों को अनदेखा कर देते हैं। जबकि अनेक शोध अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि महत्वहीन तथा नगण्य सी दिखने वाली ये क्रियाएं वीर्य की गुणवत्ता को अत्यधिक प्रभावित करती हैं, जिनका प्रतिकूल प्रभाव अंततः गर्भधारण दर पर पड़ता है।

### क) वीर्य के रख–रखाव में असावधानी

वीर्य को तरल नत्रजन में –196° से.ग्रे. पर संरक्षित किया जाता है। लापरवाही से वीर्य स्ट्रॉ को अचानक बाहर निकालने से स्ट्रॉ अधिक तापमान में आ जाती है, इससे वीर्य की गुणवत्ता पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। वीर्य में शुक्रकीट की चलिष्णुता कम हो जाती है। फलस्वरूप ऐसे वीर्य का उपयोग करने पर गर्भधारण की संभावनायें भी अत्यन्त क्षीण हो जाती हैं एवं पशु रिपीट ब्रीडर हो जाता है। कोल्ड चेन के रख–रखाव में कमी होने से वीर्य की गुणवत्ता पर अत्यधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। वीर्य स्ट्रॉ को निकालने, काटने, लोड करने एवं ए.आई. गन पर शीथ लगाने की प्रक्रिया अति महत्वपूर्ण है। कभी–कभी स्ट्रॉ की कटिंग समुचित तरीके से न होने एवं शीथ की लॉकिंग न होने के कारण वीर्य के शीथ और ए.आई. गन के बीच में वापस पीछे आने से गर्भधारण की संभावना समाप्त हो जाती है।

### ख) साफ–सफाई की कमी

कृत्रिम गर्भाधान करते समय स्वच्छता का पूर्ण ध्यान नहीं रखने से योनि एवं गर्भाशय में संक्रमण होने की अधिकतम संभावना रहती है। अधिकांश इन्सेमिनेटर (कृत्रिम गर्भाधान करने वाले व्यक्ति) स्वच्छता के महत्व को नहीं समझने के कारण, गोबर व धूल–मिट्टी लगे हुए भग को छूते हुए ए. आई. गन गर्भाशय ग्रीवा से होकर गर्भाशय में पहुंचा देते हैं। अर्थात् कृत्रिम गर्भाधान को जीवाणु रहित तरीके से नहीं करने पर पशु एवं पशुपालक को गंभीर परिणाम पशु के हमेशा के लिए अनुत्पादक एवं बांझ हो जाने के रूप में मिल सकते हैं।

### ग) उचित तरीके से उचित स्थान पर गर्भाधान न करना

अनुचित तरीके से मादा पशु के जनन अंगों का परीक्षण एवं गलत तरीके से ए. आई. गन/ पिपेट के गर्भाशय ग्रीवा में पहुँचाने से जनन अंगों में घाव होने से संक्रमण होने की पूरी संभावना होती है, जिसके परिणामस्वरूप पशु की उर्वरता पर अत्यन्त हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

मादा जननांग में उचित स्थान (गर्भाशय ग्रीवा/गर्भाशय) पर वीर्य न पहुँचा पाने का कारण कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्त्ता की लापरवाही या अज्ञानता है, जिसके कारण पशुओं में अनुत्पादकता/अनुर्वरता की विषम समस्या उत्पन्न हो सकती है।

## घ) उचित समय से पूर्व या बाद में कृत्रिम गर्भाधान करना

मादा पशु को ऋतु की मध्य अवस्था से अन्तिम अवस्था के बीच कृत्रिम गर्भाधान करने से सफल निषेचन की अत्याधिक संभावना रहती है। यदि गर्मी की प्रारम्भिक अवस्था या अन्तिम अवस्था के पश्चात् कृत्रिम गर्भाधान करते हैं तो शुक्राणु या अण्डाणु कें अधिक आयु हो जाने के कारण गर्भधारण की संभावना अत्यंन्त कम हो जाती है।

## ड.) वीर्य स्ट्रा को निकालने हेतु वीर्य स्ट्रॉज से भरे कनस्तर को तरल नत्रजन पात्र की गर्दन के निचले भाग से ऊपर उठाना

वीर्य स्ट्रॉ को कनस्तर में से निकालने हेतु यदि लम्बी चिमटी का प्रयोग किया जाए तो कनस्तर को तरल नत्रजन पात्र की गर्दन की निचली सतह से ऊपर उठाने की आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु कार्य को अतिशीघ्र पूर्ण करने के लोभवश कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता वीर्य स्ट्राज से भरे कनस्तर को उसकी गर्दन से ऊपर तक उठाकर वीर्य स्ट्रॉ को उंगलियों से निकाल लेते है। तरल नत्रजन से पूरी तरह भरे हुए पात्र (क्रायोकेन) की पेंदी से लेकर इसकी गर्दन की निचली सतह तक का तापमान –192° से.ग्रे. तक होता है। परन्तु गर्दन की निचली एवं ऊपरी सतह के बीच तापमान –192° से.ग्रे. से लेकर 0.2° से.ग्रे. तक होता है। अतः कनस्तर की गर्दन को निचली सतह से ऊपर उठाने तथा उसे पुनः अंदर रखने पर उसमे रखे हुए वीर्य को तापमान के अचानक उतार–चढ़ाव के फलस्वरूप वीर्य में उपस्थित शुक्राणुओं की या तो मृत्यु हो जाती है या फिर उनकी गतिशीलता घट जाती है। इसका सीधा दुष्प्रभाव गर्भधारण की संभावना पर पड़ता है।

## च) जमे हुए वीर्य को पिघलाने हेतु उचित तापक्रम के पानी का प्रयोग न करना

जमे हुए वीर्य को पिघलाने हेतु वीर्य स्ट्रा को 35-37° से.ग्रे. (95-103° फारेनहाइट) तापमान वाले पानी में कम से कम 30 सेकण्ड तक रखना अति आवश्यक है। ऐसा करने से वीर्य का तापमान भी इतना ही हो जाता है जितना कि पशु के शरीर का तापक्रम होता है। परंतु अधिकांश कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता पानी के तापमान का अंदाज पानी को छूकर लगाते हैं। जबकि इस तरह पानी के तापमान का सही माप असंभव है। यदि पानी का तापमान उपरोक्त तापमान से कम या अधिक है तो वीर्य का तापमान भी तदनुसार कम या अधिक होगा। इस तापमान के वीर्य को जब पशु के प्रजनन अंग में स्थापित किया जाता है तो अंग के तापमान से भिन्न तापमान होने के कारण वीर्य में उपस्थित शुक्राणुओं की या तो मृत्यु हो जाती है या उनकी गतिशीलता कम या समाप्त हो जाती है।

## छ) वीर्य स्ट्रॉ को कृत्रिम गर्भाधान यंत्र में समायोजित करने से पहले पूर्ण रूपेण न सुखाना

यदि वीर्य स्ट्रा पूरी तरह से सूखा न हो तो पानी की बूँदे वीर्य के साथ मिश्रित होकर पशु के जननांग में चली जाती है। इससे दो समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैः

1. शुक्राणुओं की पूंछ के आपस में चिपकने के कारण उनकी गतिशीलता में कमी के फलस्वरूप गर्भधारण की संभावना कम हो जाती है।
2. पानी की बूँदे विसंक्रमित न होने के कारण पशु के जननांग को संक्रमित कर सकती हैं।

## ज) वीर्य स्ट्रॉ के उचित तरीके से न काटना

काटने के पश्चात स्ट्रॉ का ऊपरी सिरा कृत्रिम गर्भाधान यंत्र के ऊपरी छोर के समानान्तर न होने पर वीर्य की कुछ मात्रा शीथ तथा कृत्रिम गर्भाधान यंत्र के बीच में आ जाती है। इससे दो समस्यायें उत्पन्न होती हैः

1. वीर्य की जितनी मात्रा पशु जननांग में जानी चाहिए उससे कम जा पाती है, जो कि गर्भधारण की संभावना को कम करती है।
2. कृत्रिम गर्भाधान यंत्र को संक्रमित कर सकती है जो आगे अन्य पशु को किये जाने वाले कृत्रिम गर्भाधान के दौरान पशु जननांग को संक्रमित कर सकती है।

## कृत्रिम गर्भाधान की अधिकतम सफलता हेतु सुझाव

उपरोक्त त्रुटियों द्वारा होने वाली हानियों को ध्यान में रखते हुए कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ताओं द्वारा निम्नांकित क्रियाओं को अवश्य अपनाना चाहिएः–

1. वीर्य स्ट्रॉ को निकालने हेतु वीर्य स्ट्रॉज से भरे कनस्तर को तरल नत्रजन पात्र की गर्दन की निचली सतह से ऊपर कभी न उठायें।
2. वीर्य स्ट्रॉ को कनस्तर से निकालने हेतु हमेशा लम्बी चिमटी का प्रयोग करें। क्योंकि उंगलियों से स्ट्रॉ निकालने हेतु कनस्तर को ऊपर तक उठाना पड़ेगा जो कि वीर्य की गुणवत्ता को निश्चित ही प्रभावित करेगा।
3. जमे हुए वीर्य को पिघलाने हेतु वीर्य स्ट्रॉ को 37° से.ग्रे. ±1° से.ग्रे. (95–103° फारेनहाइट) तापमान वाले पानी में कम से कम 30 सेकण्ड एवं अधिक से अधिक 1 मिनट तक अवश्य रखें।
4. पानी का तापमान मापने हेतु थर्मामीटर का प्रयोग सुनिश्चित करें।
5. निश्चित समय तक स्ट्रॉ को उचित तापक्रम के पानी में रखने के लिए घड़ी का प्रयोग करें।

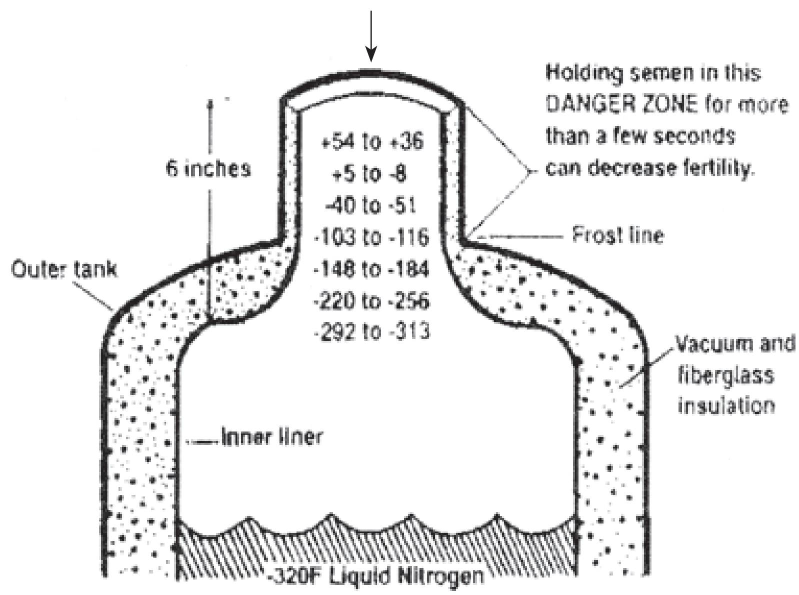


*वीर्य संरक्षण हेतु तरल नत्रजन टैंक की आन्तरिक संरचना*

6. कृत्रिम गर्भाधान यंत्र में डालने से पूर्व स्ट्रॉ को स्वच्छ कपड़े से अच्छी तरह सुखा लें।
7. स्ट्रॉ को काटते समय इस बात का ध्यान रखें कि स्ट्रॉ को उसमें उपस्थित वायु के बुलबुले (एयर बबल) के बीच से काटा जाए तथा काटने के बाद का ऊपरी छोर कृत्रिम गर्भाधान यंत्र/कृत्रिम गर्भाधान गन के ऊपरी छोर के समानान्तर हो।

कृत्रिम गर्भाधान एक सुरक्षित तकनीक है लेकिन अधिकांश पशुपालक यह कहकर इसे अपनाने से हिचकिचाते हैं कि इसके द्वारा गर्भधारण की संभावना कम रहती है। कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्त्ता यदि उपरोक्त सुझावों को अपनाते है तो कृत्रिम गर्भाधान द्वारा गर्भधारण की संभावना बढ़ेगी। इस प्रकार कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता एवं पशुपालक दोनों ही लाभान्वित होंगें।

☆☆☆☆☆

# गाय–भैंस से प्रति वर्ष एक बच्चा प्राप्त करने हेतु अत्यन्त उपयोगी जानकारी

*संजय कुमार मिश्र*
*उ. प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशुचिकित्सा एवं पशु पालन विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)*

अपनी गाय, भैंस से प्रति वर्ष एक बच्चा प्राप्त करने के लिए और अत्यधिक दुग्ध उत्पादन हेतु पशुपालक बन्धु निम्न बिंदुओं पर ध्यान दें।

1. अपने पशुओं को हर तीसरे माह अंत:कृमियों (पेट के) की औषधि पशु चिकित्सक की सलाह से दें।
2. सभी पशुओं को 25 से 30 ग्रा. खनिज मिश्रण प्रतिदिन खिलायें।
3. प्रजनन योग्य मादा पशु को सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति हेतु न्यूट्रीसेक बोलस 2 सुबह एवं 2 सायं 15 दिन तक खिलायें।
4. प्रत्येक पशु को 5 से 20 कि. ग्रा. हरा चारा प्रतिदिन खिलायें।
5. पशु को प्रत्येक अवस्था एवं मौसम में पशु चिकित्सालय से संपर्क कर पशुओं में होने वाली बीमारी एवं उसकी रोकथाम के बारे में जानकारी प्राप्त करें एवं टीकाकरण करायें।
6. गाय/भैंस को ब्याने के दो दिन पूर्व से पशु को गुनगुने स्वच्छ पानी से नहलाकर साफ व सूखा रखें। पीछे की तरफ से ढलवा भूमि पर न बाँधे तथा पूर्ण निगरानी रखें।
7. ब्याने से पूर्व गाय/भैंस को कम से कम 6 इंच मोटी धान की पुआल/गन्ने की सूखी पत्ती की बिछावन पर बाँधें। इससे पशु के गर्भाशय में संक्रमण पहुँचने की संम्भावना काफी कम हो जाएगी।
8. पशुओं को काढ़ा बनाकर देने हेतु पुराना गुड़, सौंठ, अजवायन, मैथी, शतावर आदि कूट कर मिलाकर रख लें/कैल्शियम सीरप भी रखें।
9. ब्याने के पश्चात नवजात बच्चे को आधे घण्टे के भीतर कोलेस्ट्रम (खीस/पेवसी) अवश्य पिलायें क्योंकि–
   - इससे बच्चे की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
   - यह जेर गिराने में विशेष मदद करता है।
10. सामान्यत: गाय/भैंसों में जेर गिरने का सामान्य समय ब्याने के 6 से 8 घण्टे है। यदि उपरोक्त समय पश्चात् भी जेर न गिरे तब पशु को 100 से 150 मि. ली. कैल्शियम प्रतिदिन पिलायें। और इन्वोनाल/यूट्रसेफ/मिट्राटोन नामक औषधि 100 मिली सुबह शाम पिलायें। यदि 48 तक घण्टे तक जेर नहीं निकलती है तो पशु चिकित्सक को बुलाकर जेर निकलवायें और कम से कम तीन दिन तक बच्चे दानी (गर्भाशय) में, (टेट्रासाइक्लीन बोलस एवं फ्यूरिया बोलस) डलवायें। पशु के पीछे का भाग हल्के गुनगुने पानी से धोकर हमेशा स्वच्छ रखें और पोटेशियम परमेगनेट का (1:1000) घोल भी साफ सफाई में उपयोग कर सकते हैं। जेर निकलवाने के पश्चात एन्टीवायोटिक (प्रति जैविक) का टीका अवश्यक लगवाये।
11. अधिक दूध देने वाले पशुओं का पूरा दूध एक ही समय में न निकाले। थोड़ा–थोड़ा एक दिन में चार से पाँच बार निकाले, इससे पशु को मिल्क फीवर (हाइपोकैल्शिमिया) नहीं होगा।
12. इस दौरान पशुओं के थनों की साफ सफाई पर विशेष ध्यान दें। थन को पोटेशियम परमैगनेट (1:10000) के घोल से दूध दोहन से पहले एवं बाद में थन धोने से थनैला रोग से बचाव किया जा सकता है।

13. ब्याने के तुरन्त बाद यदि नवजात बच्चे को सॉस लेने में कठिनाई हो तो उसके पिछले पैर पकड़कर ऊपर की ओर उठा लें। फिर उसके वक्ष (छाती) भाग से गर्दन, नाक के छिद्र तक मालिश करके उसकी नाक और मुँह पर फंसी जाली/स्राव को साफ करें और बच्चे को नासिका छिद्र में उंगली से खुजलाहट पैदा करने पर बहुत सा तरल स्राव (म्यूकस) बाहर निकलता है।

14. पशु और उसके नवजात बच्चे को साफ सुथरी जगह पर बांधे।

15. ब्याने के 6-15 दिनों के अन्दर माँ एवं बच्चे दोनों को कृमिनाशक औषधि अवश्य दें।

16. गाय/भैंस को ब्याने के 50 से 60 दिन बाद गर्मी के लक्षण दिखलाई देने पर पशु का कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए। जो पशु ब्याने के दो माह तक गर्मी नहीं आते है उनका पशु चिकित्सक से उपचार कराना चाहिए।

17. कृत्रिम गर्भाधान कराने के दो माह पश्चात् गर्भ की जाँच अवश्य करायें, जिससे शेष गर्भकाल में उस पशु की देखभाल उचित रूप से की जा सके। यदि पशु गर्भित नहीं होता है तो गर्भ न ठहरने के कारणों का पशु चिकित्सक की मदद से पता करने का प्रयास करें, जिससे उसका समुचित उपचार हो सके। गर्भकाल के दौरान पशु को संतुलित आहार देना चाहिए जिससे गर्भस्थ शिशु का विकास हो सके।

18. हर पशुपालक को अपने पशु की आयु, गर्मी में आने की तिथि, गर्भित होने की तिथि तथा ब्याने की सम्भावित तिथि एवं ब्याने की तिथियों का लेखा जोखा रखना चाहिए। उपरोक्त बिन्दुओं पर ध्यान देने से पशु का प्रजनन समय से होगा तथा गाय में प्रति एक वर्ष में एक बच्चा एवं भैंस में हर 13 महीने में एक बच्चा पैदा करना आसान हो सकता है। जिसके परिणाम स्वरूप अधिक दुग्ध उत्पादन द्वारा अधिक लाभ कमाया जाना सम्भव हो सकता है।

19. यदि नाभि–नाल न टूटी हो तो शरीर से 2–3 सेन्टी मीटर दूर तक निर्जमीकृत धागे से बाँध देना चाहिए और इसके पश्चात् किसी निर्जमीकृत कैंची की सहायता से एक सेमी दूरी पर काट दें। कटे स्थान पर जीवाणु प्रतिरोधी लोशन (बीटाडीन) लगायें तथा उसका मक्खियों और कौओं से बचाव करें।

## ब्याने के बाद गर्भाशय का संक्रमण

पशु के ब्याने के बाद भूरे रंग का बिना बदबूदार स्राव सामान्य रूप से आता है। अतः पशु के ब्याने के पश्चात् गर्भाशय का संक्रमण बहुत सामान्य बात है। संक्रमण के कारण दुग्ध उत्पादन एवं पशु के अगली बार समय से गर्भित होने पर भी प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

संक्रमण की तीव्रता निम्न बातों पर निर्भर करती है:

1. गर्भाशय में स्राव की मात्रा की अधिकता
2. गर्भाशय और पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता
3. जीवाणुओं के पोषण हेतु बचे पदार्थों की मात्रा अर्थात् गर्भाशय में रूके हुए जेर आदि की मात्रा

## लक्षण

1. ब्याने के पश्चात् बदबूदार तरल स्राव गर्भाशय से मूत्र मार्ग द्वारा बाहर निकलना
2. गर्भाशय से अत्यधिक मात्रा में तरल पदार्थ आना
3. दूध का कम होना
4. पशु का चारा खाना एवं पानी पीने में कमी होना
5. गुदा एवं योनि मार्ग द्वारा निरीक्षण करने पर पशु को असहनीय दर्द होना

6. गर्भाशय का सामान्य आकार से बड़ा होना

7. शरीर का तापमान सामान्य से अधिक या कम होना

8. पशु में लंगड़ापन होना

## गर्भाशय के संक्रमण की सरल एवं उपयोगी जाँच विधि

गर्मी के समय पशु के योनि द्वार से निकले स्राव की 3 से 5 मिली मात्रा को 5 से 6 प्रतिशत कास्टिक सोडा के घोल में एक परखनली में मिलाकर उसे 80 से 100 डिग्री सेन्टीग्रेड के गर्म पानी में रख दें। यदि कुछ समय (30 से 40 मिनट) बाद या इससे कम समय में ही धीरे धीरे घोल का रंग पीला होने लगता है तो संक्रमण का होना निश्चित है। अधिक पीला रंग होने पर गम्भीर संक्रमण होने की संम्भावना होती है यदि पीला रंग नहीं आता है तो यह समझना चाहिए कि संक्रमण नहीं है।

## कृत्रिम गर्भाधान की अधिकतम् सफलता हेतु मुख्य सुझाव

1. यदि किसी ओसर का कृत्रिम गर्भाधान करना है, तो उसका शरीर भार प्रथम बार कृत्रिम गर्भाधान करने से समय 240-250 कि.ग्रा. से कम नहीं होना चाहिए।

2. पशु के जनन अंगों से किसी भी प्रकार का असामान्य स्राव नहीं होना चाहिए।

3. पशु रिपीट ब्रीडर/संक्रमण युक्त नहीं होना चाहिए। ऐसे पशुओं को सम्पूर्ण उपचार करने के पश्चात् ही कृत्रिम गर्भाधान करना चाहिए।

4. कृत्रिम गर्भाधान से पूर्व गुदा परीक्षण द्वारा सम्यक गर्भ जांच करना अति आवश्यक है।

5. कृत्रिम गर्भाधान से पूर्व पशु का सही ऋतु की पहचान हेतु सम्यक परीक्षण करना भी नितान्त आवश्यक है।

6. सामान्य प्रसव के उपरान्त कम से कम 2 महीने एवं असामान्य प्रसव तथा जेर रूकना, गर्भपात, कठिन प्रसव के उपरान्त कम से कम 3 महीने पश्चात् ही कृत्रिम गर्भाधान करना चाहिए।

7. ऋतु के मध्य काल से अन्तिम काल के बीच कृत्रिम गर्भाधान करना चाहिए।

8. पशुओं में गर्मी अधिकांशतः शाम 6 बजे से प्रातः 6 बजे के मध्य होती है।

9. कृत्रिम गर्भाधान के समय शान्त वातावरण हो एवं पशु को तनाव मुक्त रखें।

10. बच्चा देने के बाद 2 से 3 माह के अन्दर पशु को पुनः गर्भित करायें।

11. कृत्रिम गर्भाधान के तुरन्त बाद पशु को मत दौड़ाए।

12. कृत्रिम गर्भाधान करने से पहले एवं बाद में पशु को छाया में रखें।

13. हरे चारे के साथ सन्तुलित आहार दें।

14. आवास हवादार, छायादार व भूमि समतल हो।

15. समय–समय पर संक्रामक रोगों से बचाव हेतु ऑयल एडजुवेंट टीका लगवायें।

☆☆☆☆☆

# पशुओं में बांझपन की समस्या

*मोहन सिंह ठाकुर*
*पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)*

भारत की अर्थ व्यवस्था एवं सामाजिक–आर्थिक विकास में कृषि एवं पशुपालन का महत्वपूर्ण योगदान है। हमारे देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। पशुपालन एवं कृषि यहाँ एक दूसरे के पूरक है। पशुओं में बांझपन एक व्यापक समस्या है, जो नर एवं मादा दोनों पशुओं में होती है।

पशुपालन व्यवसाय से जुड़े किसानों, पशुपालकों को पशु से संबंधित कई समस्याओं से जूझना पड़ता है। प्रायः देखा जाता है कि जब तक पशु दूध दे रहे होते है, किसान पशु के गरम होने या न होने के बारे में सोचता ही नहीं। उसकी धारणा होती है कि जब तक पशु दुधारू है, गाभिन नहीं होगा। परिणामस्वरूप एक ब्यांत से दूसरी ब्यांत का अन्तर लगभग 15 महीने से 30 या 40 महीने तक या इससे भी अधिक हो जाता है। जानने योग्य सच्चाई यह है कि ब्यांत के 50 दिन से दुधारू गाय, भैंसे नियमित रूप से 20–22 दिन में गरम होने लगती हैं और समय पर सांड/भैंसे से मिलाने पर या कृत्रिम गर्भाधान विधि से पशु गाभिन होने योग्य भी होता है। दो ब्यांतों में लम्बे अन्तर से, दूध की कुल मात्रा से तुलनात्मक रूप से पशु के आहार तथा रख–रखाव की कीमत भी अधिक होती है। इस वास्तविकता को किसान भाई नजर अंदाज कर व्यर्थ में ही घाटा सहते हैं। इसी दौरान पशु में गर्मी के लक्षण भी कमजोर हो जाते हैं, जिससे पशुपालक यह नहीं समझ पाता कि पशु गर्मी में है अथवा नहीं, साथ ही पशु की गाभिन होने की क्षमता भी कम हो जाती है और इस तरह के पशुओं में गर्भ ठहरना एक कठिन समस्या बनता जाता है। इस समस्या से बचने के लिए आवश्यक है कि ऐसे पशु की हर 7 या 10 दिन के अन्तर से जाँच की जाये तथा पशुचिकित्सक द्वारा ही उचित आवश्यक इलाज कराया जाये। यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि अन्य व्यक्ति जैसे कम्पाउण्डर, स्टाकमैन, इन्सेमिनेटर आदि के द्वारा चिकित्सा कराने से बहुत ही कम लाभ या कोई भी लाभ न होने की संभावना ही हैं। किसानों के हित में कुछ विशेष बातें इस प्रकार हैं:

1. दुधारू पशु प्रत्येक साल एक बछड़ा या बछिया दे।
2. पशु को ब्याने के बाद 90 से 120 दिन के भीतर फिर से गाभिन हो जाना चाहिए और इस तरह प्रत्येक वर्ष दूध सात या आठ माह मिलना चाहिए। इस तरह का पशु ही आर्थिक रूप से लाभकारी हो सकता है।

बांझपन के कारण पशु अनुत्पादक एवं व्यर्थ हो जाते हैं। बांझपन के कारण पशुओं की उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता घट जाती है, जिससे पशु बेकार हो जाते हैं एवं पशुपालक को विवश होकर पशु को काफी कम दामों पर बेचना पड़ता है।

## बांझपन के कारण

पशुओं के बांझपन के प्रमुख कारण निम्न हैं:

### 1. असामान्य प्रजनन अंग

प्रजनन तंत्र में जन्म से ही या फिर बाद में कुछ ऐसी असामान्यता आ जाती है, जो पशु को बांझ बना देती है। जन्म से होने वाली कुछ असामान्यताएं निम्न है:

- एक या दोनों ही अंडाशयों का अनुपस्थित होना।
- एक या दोनों अंडाशयों का आकार छोटा होना।
- नर पशुओं में एक या दोनों वृषण का छोटा होना।
- एक अथवा दोनों अंडनली का पूर्णतः विकास न होना।

- फ्रीमार्टिन की स्थिति में नर का मादा दोनों नववत्स एक साथ पैदा होते हैं, जिससे नर वत्स तो पूर्णतया सामान्य होता है, लेकिन मादा बछिया सामान्यतः बांझ होती है। मादा वत्स के वाह्य जनन अंग तो सामान्य, परन्तु अंतरिक जनन अंग सामान्यतः नर गुण प्रदर्शित करते हैं।
- गम्भीर स्थिति में जननांग वृषण से मिलते हैं, परन्तु उसमें शुक्राणुओं का उत्पादन नहीं होता। कम प्रभावित स्थिति में मादा जनन तंत्र छोटा होता है एवं अंडाशय कम विकसित होता है।

जन्म के बाद भी बांझपन हो सकता है जिसके प्रमुख कारण निम्न हैः–

- गर्भाशय में मवाद का होना।
- गर्भाशय में घाव होना।
- अंडनली का अंडाशय से चिपक जाना।
- कभी–कभी आपरेशन के बाद गर्भाशय आँतों या पेट की दीवारों से चिपक जाती है।
- योनि में संक्रमण के कारण उसमें कड़ापन आना।
- अन्ड नलियों में पानी भर जाना।
- मादा जनन अंगों में कैंसर होना।

### (2) असामान्य शारीरिक क्रियायें

**चुप गर्मी या सुप्त गर्मीः** इस अवस्था में पशु गर्मी के स्पष्ट लक्षण प्रदर्शित नहीं करता है, जिसके कारण पशुपालक को पशु के गर्मी में आने का पता नहीं लग पाता है।

**हॉरमोनल कारणः** मादा पशुओं में हारमोन्स की कमी के कारण अंडाशय छोटा रह जाता है। इस्ट्रोजन हॉरमोन की अधिकता तथा प्रोजेस्ट्रान हॉरमोन की कमी के कारण पशु गर्मी में आता है, परन्तु गर्भ धारण नहीं कर पाता है। आजकल गाँवों में ऑक्सीटोसिन हारमोन का प्रयोग बहुतायत में हो रहा है, जिसे पशुपालक दूध निकालने वाला इन्जेक्सन कहते हैं। पशुओं पर यह इंजेक्सन हानिकारक प्रभाव डालता है जो निम्न हैः

- पशु शरीर में असंतुलित हारमोन के कारण पशु गर्मी में नहीं आते है और इस हारमोन के लगातार प्रयोग करने से पशुओं का गर्मी में आना ही बंद हो जाता है।
- यह हारमोन दूध के साथ बाहर निकलता है। पशु के बच्चों द्वारा इसे पीने से उनमें परिपक्वता देर से आती है।
- मनुष्यों द्वारा इस तरह के दूध का सेवन करने से कैंसर तथा बच्चों में विकृतियाँ होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं।
- गर्भवती मादाओं में इस हारमोन के प्रयोग करने से गर्भपात हो सकता है। तथा अधूरा बच्चा होने की सम्भावना हो सकती है। अधूरा बच्चा होने से पशुओं में जेर रूक जाती है, बच्चेदानी में सूजन आ जाती है, पशु गर्मी में नहीं आता है और पशु पुनः गर्भधारण नहीं करता है।

अतः पशुपालकों को दूध निकालने के लिए आक्सीटोसिन का उपयोग कभी नहीं करना चाहिए।

### प्रबंधन से संबंधित अव्यवस्थाएं

पशुओं के आहार में पोषक तत्त्वों की कमी के कारण बांझपन होता है। पशु आहार में ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन, फॉस्फोरस, कोबाल्ट लोहा, तॉबा एवं आयोडीन की कमी से पशु बांझ हो जाते हैं। अतः पशुओं को पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार देना चाहिए।

बड़े डेयरी प्रक्षेत्रों पर मादा के गर्मी में आने का पता नहीं लगता है। अतः बड़े प्रक्षेत्र पर मादा पशु की गर्मी का पता लगाने के लिए टीजर सांड रखना चाहिए। कभी–कभी अकुशल व्यक्ति के द्वारा कृत्रिम गर्भाधान करने से पशु जननांगों में क्षति/संक्रमण हो जाता है, जिससे पशु बांझ हो सकता है। अतः पशुपालकों को कुशल व्यक्ति के द्वारा ही कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिए।

## संक्रमण रोग के कारण बांझपन

पशुओं में गर्भपात, बच्चेदानी का पलटना, बच्चेदानी में सूजन का आ जाना, बच्चेदानी में मवाद का पड़ जाना, अंडनली में सूजन आना एवं मवाद पड़ने जैसे आदि के कारण संक्रमण होने से बांझपन हो जाता है। इन स्थितियों में पशु पर ध्यान न दिया जाय तो जीवाणु, विषाणु, प्रोटोजोआ, कवक आदि के द्वारा जननांगों में संक्रमण होने से बांझपन हो जाता है। ऐसे संक्रामक रोग से ग्रसित पशुओं को अलग कर, पशुचिकित्सक से जाँच करवा कर इसका समुचित इलाज कराना चाहिए। पशुओं को छः महीने के अन्तराल के बाद कृमिनाशक दवा देनी चाहिए। बछड़े एवं बछड़ी के ब्याँने के तुरन्त बाद जल्द से जल्द उसकी माँ के द्वारा चाटने देना चाहिए जिससे गाय में ममता बढ़ती है।

पशुपालकों को यह समझ लेना जरूरी है कि दुधारू गाय–भैंस के गर्भ न ठहरने की समस्या की रोकथाम में पशुपालक अनेक उपायों द्वारा पशुचिकित्सक की सहायता कर सकता है। इसके लिये उसे अपने प्रत्येक दुधारू पशु के बारे में पूरी सूचना एक कापी–रजिस्टर में अलग–अलग पशु के बारे में लिखकर रखना चाहिये। इससे पशुचिकित्सक समय पर पूरी स्थिति समझकर व पशु जाँच के बाद सही–सही इलाज ठीक समय पर देकर पशुपालक का खर्च कम कर सकता है व पशुपालक को दूध से प्राप्त आमदनी बढ़ाने में सहायक हो सकता है। इस तरह के पशुओं को समुचित चिकित्सा और देखभाल की आवश्यकता होती है। पशु पालकों को चाहिए कि इस तरह के पशुओं का इलाज यथाशीघ्र किसी पशुचिकित्सक से करायें।

☆☆☆☆☆

# जम्मू के परजीवी जनित रोग

***राजेश कटोच, अनीश यादव, राजेश गोदरा एवं साहिल कुमार***

*परजीवी विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय,*

*शेर–ए–कश्मीर कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, आर.एस. पुरा, जम्मू (जम्मू व कश्मीर)*

परजीवी वह जीव है जो दूसरे जीवधारी पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ये दो प्रकार के होते है। शरीर के अन्दर रहने वाले अंतः परजीवी कहलाते हैं तथा शरीर की त्वचा पर रहने वाले वाह्य परजीवी कहलाते हैं।

## (क) अन्तः परजीवी जनित रोग

### 1. यकृत–फ्लूक

ये रोग फैसियोला के कारण उत्पन्न होता है। यह दो प्रकार का होता है–तीव्र और चिरकालीन। तीव्र दशा में पशु अचानक मर जाता है। नथुनों पर रक्त मिश्रित झाग आता है तथा गोबर में खून आता है। चिरकालीन दशा में भूख कम हो जाती है, जानवर की शक्ति क्षीण होने लगती है। श्लेष्म–कलाएं पीली पड़ जाती हैं तथा सूजन आ जाती है। त्वचा सूख जाती है। भेड़ो की ऊन गिरने लगती है। पशु दुर्बल एवं कृषकाय हो जाता है। अक्सर पशु को अतिसार या कब्ज हो जाती है, तथा हल्का बुखार रहने लगता है। अन्ततः पशु की मृत्यु हो जाती है।

गाय भैंसों में अक्सर कब्ज हो जाती है। गोबर करते समय पशु को काफी कष्ट होता है। रोग की तीव्र दशा में पशु को अतिसार हो जाता है तथा पशु कमजोर हो जाता है। जम्मू क्षेत्र के कंडी क्षेत्र में अक्सर इस रोग का प्रकोप पाया जाता है।

### उपचार एवं बचाव

1) रोग का सन्देह होते ही पशु चिकित्साधिकारी से सलाह लेनी चाहिए।
2) पशुओं को खड्ड या नदी के आस–पास नहीं चराना चाहिए।
3) पशुओं को साफ पानी पिलाना चाहिए।
4) पशुओं को घोंघा वाले तालाब अथवा नदी का पानी नहीं पिलाना चाहिए।
5) घोंघों को नष्ट करने के लिए नीला थोथा (कॉपर सल्फेट) का घोल (एक लाख में एक भाग) उपयोग कर सकते हैं।
6) रोगी पशुओं के गोबर को नदी या तालाब के पानी से दूर रखना चाहिए।
7) रोगी पशुओं का इलाज करना चाहिए।

| | |
|---|---|
| रैफोक्सानाईड | 7.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार |
| ट्राईकलावेन्डाजोल | 12 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार |
| एलवेन्डाजोल | 7.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार |

### 2. आँत के फ्लूक

ये रोग ऐम्फीस्टोम की विभिन्न प्रजातियों से होता है। इसमें पशु को अतिसार, खून रहित गोबर, खून की कमी तथा सूजन जैसे लक्षण आ जाते हैं। गोबर में अविकसित फ्लूक पाये जाते हैं। पशु काफी कमजोर हो जाते हैं तथा बार–बार पानी पीते हैं। भारी मात्रा में पशुओं की मृत्यु हो जाती है। इस रोग का उपचार एवम् बचाव यकृत फ्लूक जैसा है। यह रोग जम्मू से सिंचित क्षेत्र में पशुओं में भारी संख्या में पाया जाता है।

### 3. पेट और आँत में गोलकृमि जनित रोग

पेट और आंत में गोलकृमि जानवरों में खून की कमी कर देते है। ये कृमि आंत को बंद कर देते है। कई कृमि पाचक प्रणाली में विकार उत्पन्न कर देते हैं। पशुओं में अतिसार हो जाता है। पशु बहुत जल्दी कमजोर हो जाते हैं। पशु खाना–पीना बन्द कर देते हैं। सुस्ती और दुर्बलता के कारण पशु अवसन्न हो जाते हैं। अन्त में पशु की मृत्यु हो जाती है। पशु की ऊन उत्पादन तथा दूध उत्पादन क्षमता में भारी कमी आ जाती है।

#### उपचार और बचाव

एलवेन्डाजोल, फैनवेन्डाजोल, मीवेन्डाजोल, कलोजेटल, आईवरमैकटीन इत्यादि औषधियाँ इलाज के काम आती हैं। बचाव के लिए छोटे बच्चों को माँ से अलग साफ चारागाह में चराना चाहिए। पशुओं को पानी के नजदीक लगी घास नहीं खिलानी चाहिए। पशुओं को नियमित रूप से दवाई पिलानी चाहिए। जानवरों के चारगाह भी बदलते रहने चाहिए।

### 4. चिचड़िया बुखार

यह छोटी उम्र तथा संतति के पशुओं में अधिक होता है। देसी नस्ल के पशुओं में यह रोग कम पाया जाता है। यह रोग हायलोमा नामक चिचड़ी द्वारा फैलाया जाता है। इस रोग में पशुओं को बुखार (40 से 42 °C) हो जाता हैं। आंखों में पानी बहने लगता है, पशु सिर झुका लेता है। इसमें लसीका ग्रंथियां व आंखों की पलकें सूज जाती है। पशु अचानक ही खाना–पीना छोड़ देता है। वह काफी सुस्त व कमजोर हो जाता है। शरीर में खून की कमी हो जाती है। पशु दो–तीन दिन में मर जाता है।

#### उपचार एवं बचाव

बुपारवाकोन, पारवाकोन, औक्सीटेटरासाईक्लिन आदि औषधियां इलाज के काम आती हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए चिचड़ियों को नष्ट करना आवश्यक है।

1) पशुशाला में चारों पड़ी हुई घासफूस को जला देना चाहिए।
2) पशुशाला में गड्ढे तथा दीवारों की दरारों को भर देना चाहिए।
3) पशुशाला के पास घास नहीं जमा करना चाहिए।
4) जमीन को बखेरने से चिचड़ियों के अण्डे और बच्चे धूप की तेजी से मर जाते हैं।
5) कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करना चाहिए।

### 5. बबेसियोसिस

गोपशुओं में यह लाल पेशाब नामक रोग से जाना जाता है। यह रोग छोटी आयु के पशुओं की अपेक्षा बड़ी आयु के पशुओं में प्रायः अधिक होता है। रोगी पशुओं को ज्वर आने लगता है। शरीर का तापमान बढ़ जाता है। शरीर में रक्त की कमी हो जाती है और पशुओं को एनीमिया हो जाता है। पशुओं के मूत्र में हीमोग्लोबिन के कण आने लगते हैं, जिससे मूत्र लाल रंग का हो जाता है। प्रारम्भ में पशु को दस्त आते हैं और बाद में कब्ज हो जाती है। बीमार पशुओं की प्रायः मृत्यु हो जाती है और जो बच जाते हैं वह बहुत कमजोर हो जाते हैं।

#### उपचार एवं बचाव

बैरिनल, पाईरवान, बबेसान इत्यादि।

रोकथाम– पशु को किलनी रहित पशुशाला में रखा जाये, किलनी नाशक दवाईयों का उपयोग, पशुओं का चारागाह बदलना चाहिए। विदेशी नस्ल के पशुओं को स्वदेशी नस्ल के पशुओं से अलग रखना चाहिए।

## (ख) बाह्य परजीवी जनित रोग

यह पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। यह परजीवी चार प्रकार के होते हैं:

1) **किलनियां:** ये तीन प्रकार से हानि करते हैं:–
   - अ) हवा द्वारा क्षति पहुंचा कर जिसके कारण पशुओं पर मक्खियां आक्रमण करती हैं और वहां कीड़े पड़ जाते हैं, जिससे खाल की कीमत कम हो जाती है।
   - ब) रक्त चूस कर पशु में रक्त की कमी कर देते हैं।
   - स) किलनियां अन्य प्रकार के विषाणु, जीवाणु, रिकिटसिया एवं प्रोटोजोआ रोग संचारित करते हैं।

2) **जूँ:** जब किसी पशु के शरीर में बहुत ज्यादा जूएं हो जाती हैं तो वह बहुत परेशान हो जाता है। वह जुओं के कारण होने वाली खुजली को मिटाने के लिए अपने शरीर को रगड़ता है, जिससे त्वचा खराब हो जाती है और पपड़ियां पड़ जाती हैं। दूध की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है।

3) **माइट्स:** अनेक प्रकार के छिद्र बनाकर पशुओं की त्वचा में प्रवेश कर जाते हैं तथा खाज व खुजली उत्पन्न करते हैं। ये प्रायः पतले तथा अल्प बालों वाले भागों पर जैसे टांग के भीतरी भागों पर पाए जाते हैं। खाज विभिन्न प्रकार की होती है, जिसमें सैरोप्टिक, सारकोप्टिक, डिमोडैक्विक मुख्य हैं।

4) **पिस्सू:** पिस्सू के काटने से जानवर में खाज तथा ऐलर्जिक रियेक्शन हो जाता है।

### उपचार

बयुटोक्स 1:50, आईबरमैकटीन (200 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार), क्लोजैंटल (10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार), डोरामेक्टीन (200 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार)

### रोकथाम

1. पशुशाला में पड़ी घास को जलाना।
2. पशुशाला में घास इत्यादि का जमा न करना।
3. पशुशाला में गड्ढ़े तथा दीवारों की दरारें भरना।
4. जमीन को बखेरना, जिससे किलनियों के अण्डे तथा बच्चे मर जाते हैं।
5. पशुओं को जहां चिचडियां रहती हैं, वहां से कुछ समय के लिए हटा देना चाहिए ताकि उनके बच्चे तथा अण्डे नष्ट हो जायें।

☆☆☆☆☆

# हिमाचल प्रदेश के पशुओं में पाई जाने वाली उभरती बीमारियां: रोकथाम व इलाज

***सुभाष वर्मा, मनदीप शर्मा, प्रसेनजीत धर, राजेश चहोता, शैलजा कटोच एवं रमेश चन्द कटोच***

*सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, पालमपुर (हिमाचल प्रदेश)*

## गलघोंटू (एच.एस.)

**बीमारी व इसके कारण:** यह पास्चुरेला नामक जीवाणु से होती है। यह जीवाणु अधिकतर साँस की प्रणाली में पाया जाता है और पशुओं की अवरोधक शक्ति क्षीण होने पर यह बीमारी करता है। यह रोग संक्रमित पशु के सम्पर्क से होता है। हिमाचल प्रदेश में सन् 2003 से 2009 तक इस बीमारी के चौबीस प्रकोप दर्ज किए गए हैं।

**पशुओं की प्रजाति:** मुख्यतः गाय, भैंस, बकरी व सुअर इस बीमारी से ग्रसित होते हैं।

**मुख्य लक्षण:** बहुत तेज बुखार, सांस लेने में कठिनाई, गले व गर्दन में सूजन, भूख न लगना व अचानक मृत्यु इसके लक्षण है।

**रोकथाम व इलाज:** बरसात के पहले व अप्रैल–मई में बचाव का टीका लगवाएं। बीमार पशुओं को अन्य पशुओं से अलग करें तथा सफाई का विशेष ध्यान रखें।

## संक्रामक गौजातीय निमोनिया

**बीमारी व इसके कारण:** इस बीमारी के जीवाणु रोगी पशु के खांसी करने पर वायुमण्डल में फैलते हैं। ग्रहणशील कमजोर पशु सांस लेने पर इस बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं।

**पशुओं की प्रजाति:** गाय, भैंस, बकरी व कभी–कभी भेड़ इस बीमारी से ग्रसित होते हैं।

**मुख्य लक्षण:** तेज बुखार एवं सांस न ले सकने के कारण पशु की मृत्यु। यह रोग प्रायः बहुत देर तक चलता है, धीरे–धीरे भूख कम होती जाती है व दर्दपूर्ण खांसी होती है। पशु नीचे सिर झुका लेता है, कमजोरी बढ़ती जाती है तथा दो मास में मृत्यु हो जाती है।

**रोकथाम व इलाज:** साफ सुथरी व रोशनी वाली जगह में पशुओं को बाँधे। इस बीमारी के लिए कोई उपयुक्त बचाव का टीका नहीं है।

## कोलीबैसीलोसिस

**बीमारी व इसके कारण:** यह ई. कोलाई नामक जीवाणु से होती है। नवजात पशुओं में अवरोधक शक्ति क्षीण होने पर यह जीवाणु बीमारी करता है। यह बीमारी नवजात पशुओं में अतिसार गन्दगी द्वारा फैलती है।

**पशुओं की प्रजाति:** सभी प्रजाति के पशु मुख्यतः गाय, भैंस, भेड़, व सुअर इस बीमारी से ग्रसित होते हैं।

**मुख्य लक्षण:** तेज बुखार, भूख न लगना, दस्त, सुस्त शरीर, आँखे अन्दर को धँसी हुई तथा बाद में शारीरिक तापमान कम होना इस बीमारी के लक्षण हैं। कई नवजात पशु एक साथ बीमार हो जाते हैं।

**रोकथाम व इलाज:** नवजात पशुओं को साफ सुथरी जगह में रखें। जीवाणुओं को मारने वाली दवाई, ओ. आर. एस. घोल इत्यादि इसमें लाभदायक हैं।

## नाभि की सूजन

**बीमारी व इसके कारण:** यह जीवाणु जनित नवजात बछड़ें व बछडियों में पाया जाने वाला रोग है, जो कि गन्दगी वाले स्थानों पर नवजात पशुओं की नाभि दूषित होने से होता है। जीवाणु नाभि में सीधे प्रवेश कर यह रोग करते हैं।

**पशुओं की प्रजाति:** सभी जाति के पशु इस से ग्रसित हो सकते हैं, परन्तु मुख्यतः गाय, भैंस, भेड़ व बकरी में ये रोग पाया जाता है।

**मुख्य लक्षण:** नाभि में सूजन तथा बदबूदार पीक, बुखार व दस्त इत्यादि। कभी–कभी जीवाणु जिगर व जोड़ों में तकलीफ पैदा करते हैं। जोड़ों में सूजन व लंगड़ापन इसके लक्षण हैं।

**रोकथाम व इलाज:** पशु के ब्याने के समय कमरा साफ सुथरा होना चाहिए। गर्भनाल काटने के बाद नवजात पशु की नाभि में एन्टीसैप्टिक घोल व टिंचर आयोडीन लगाकर बांध दे तथा जब तक नाभि सूखकर गिर न जाए तब तक टिंचर आयोडीन लगाते रहें। रोग ग्रस्त पशुओं में एन्टीबायटिक्स के टीके लगवाएं।

## लंगड़ी (बी. क्यू.)

**बीमारी व इसके कारण:** यह क्लोस्ट्रिडियम चोविआई नामक जीवाणु से होती है। बीमारी पशु के खून व मल मूत्र द्वारा पानी व खाने वाली चीजों से दूषित होने से होती है। पशु पालन विभाग हिमाचल प्रदेश के अनुसार, साल 2003 के बाद में इस बीमारी के दो प्रकोप दर्ज हैं।

**पशुओं की प्रजाति:** मुख्यतः गाय व भैंस इस बीमारी से ग्रसित होते हैं परन्तु कभी–कभी भेड़ में भी यह बीमारी पाई जाती है। यह बीमारी युवा पशुओं (3 मास से 2 साल तक की उम्र) में अधिकतर पाई जाती है।

**मुख्य लक्षण:** कंधो, गर्दन, पीठ व पैरों में पीड़ा, कालापन तथा सूजन, तेज बुखार, लगभग तीन दिनों में कभी भी अचानक पशु की मृत्यु हो सकती है।

**रोकथाम व इलाज:** बीमार पशुओं को अन्य पशुओं से अलग कर दें। प्रतिवर्ष बचाव का टीका मई महीने में लगवाएं। ऐम्पीसिलिन का टीका बीमारी की शुरूआत में लाभदायक होता है।

## क्षय रोग/ ट्युबरकूलोसिस (टी. बी.)

**बीमारी व इसके कारण:** यह बीमारी माईकोबैक्टीरियम बोविस नामक जीवाणु से होती है। यह जीवाणु सांस व पाचन प्रणाली द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। यह बीमारी संक्रमित पशु के सीधे सम्पर्क में आने या उसके स्रावों से होती है।

**पशुओं की प्रजाति:** सभी प्रजाति के पशु मुख्यतः गाय, भैंस, भेड़, बकरी व पक्षी इस बीमारी से ग्रसित होते हैं।

**मुख्य लक्षण:** इसमें कभी–कभी कम बुखार काफी दिनों तक रहता है, खांसी, सांस लेने में कठिनाई, कमजोरी भार में कमी, जोड़ों में सूजन इस के लक्षण हैं।

**रोकथाम व इलाज:** ट्युबरकुलिन टेस्टिंग करवाएं तथा बीमार पशुओं को अन्य पशुओं से अलग कर दें।

## जोनीस डिसीज (पैरा ट्युबरकूलोसिस)

**बीमारी व इसके कारण:** यह बीमारी माइकोबैक्टीरियम पैराटयूबरक्युलोसिस नामक जीवाणु से होती है। बीमार पशु के सम्पर्क में आने व पीने के पानी और खाने वाली चीजों के बीमार पशु के गोबर से दूषित होने से बीमारी होती है।

**पशुओं की प्रजाति:** गाय, भैंस, कभी–कभी भेड़ व बकरी इससे ग्रसित होते हैं।

**मुख्य लक्षण:** आमतौर पर बुखार नहीं होता। परन्तु कभी दस्त व कभी कब्ज रहती है। बहुत पतले बदबूदार दस्त होते हैं, जो आम चिकित्सा से ठीक नहीं होते, भार में कमी व अत्याधिक कमजोरी इस रोग के लक्षण हैं।

**रोकथाम व इलाज:** जोनीस टैस्टिंग करवाएं तथा बीमार पशुओं को अन्य पशुओं से अलग कर दें। इस बीमारी के लिए उपयुक्त बचाव टीका शीघ्र ही उपलब्ध होने की संभावना है।

## थनैला

**बीमारी व इसके कारण:** यह बीमारी कई प्रकार के जीवाणुओं और फंफूद आदि के कारण होती है। पशुओं का गंदे स्थान मे रहने या ग्वालों द्वारा गंदे हाथों से दूध दुहने के कारण जीवाणु पशुओं के थनों तक पहुँचते हैं। यदि पशु के थनों में जख्म हों, पशु अधिक दूध देने वाला हो या पशु का दूध ठीक ढंग से न निकलता हो तथा पशु के थनों में यदि दूध रह जाए तो पशु इस बीमारी से शीघ्र ग्रसित होता है।

**पशुओं की प्रजाति:** गाय, भैंस, बकरी, भेड़ व सुअर इस बीमारी से ग्रसित होते हैं।

**मुख्य लक्षण:** बीमारी की शुरुआत में पशुओं को बुखार होता है। दूध निकालते समय पशु में बेचैनी अनुभव की जा सकती है। थन गर्म हो जाते हैं तथा उनमें सूजन आ जाती है। कई बार थनों से खून निकलता है तथा दूध लस्सी व छेने के पानी की तरह आता है। दूध का स्वाद नमकीन हो जाता है।

**रोकथाम व इलाज:** दूध को अवश्य निकाले तथा सफाई की ओर ध्यान दें। चिकित्सक से परामर्श कर ऐंटीबायटिक्स थनों में चढ़ाकर 12–24 घंटों के बाद दूध निकाल कर फिर दवाई थनों में चढ़ा दें। कम से कम चार दिनों तक दवाई चढ़ानी चाहिए तथा इस दूध का उपयोग नहीं करना चाहिए। दूध दुहने से पहले एवं बाद में थनों की सफाई जरूरी है।

## खुरमुंही

**बीमारी व इसके कारण:** खुरमुंही कई रूपों में मिलने वाला विषाणु है। यह छूत लगे चारे, पानी, मनुष्य के कपड़े, जूतों, बर्तन व रोगी पशु के सम्पर्क में आने से फैलता है। सन 2003 से 2007 तक इस बीमारी के 133 प्रकोप हिमाचल प्रदेश में हुए हैं। किन्तु 2007 से 2009 तक इस बीमारी का कोई भी प्रकोप दर्ज नहीं हुआ है।

**पशुओं की प्रजाति:** सभी फटे खुर वाले पशु मुख्यतः गाय, भैंस, बकरी, सुअर, याक आदि इस बीमारी से ग्रसित होते हैं। खास तौर पर विदेशी नस्लें इससे अधिक प्रभावित होती है।

**मुख्य लक्षण:** खास कर छोटी आयु वाले पशुओं में 39.4 से 40.5° से.ग्रे. तक बुखार आना, पशु के मुंह से लार निकलना व जीभ, मसूड़ों गालो के अन्दर की त्वचा, कठोर तालू तथा खुरों के बीच के स्थान पर फफोले या छाले आना इस बीमारी के लक्षण हैं। इन लक्षणों के कारण पशु जमीन पर खुर मारता है और लंगड़ाकर चलता है।

**रोकथाम व इलाज:** रोगी पशु को अन्य पशुओं से अलग रखें। प्रतिवर्ष मार्च व सितम्बर के महीने में बचाव का टीका लगवाएं। मुंह के घावों को किसी भी डिसइनफेक्टेंट जैसे की बोरिक एसिड, फिटकरी, कार्बालिक एसिड, पोटाशियम परमैंगनेट के घोल से साफ करें। खुरों के घावों को फिनायल व तेल या ऊपर लिखी दवाई से धो लें। खुरों के घावों पर कोलतार और फिटकरी का मिश्रण लगाएं।

## हलकपन या पागलपन

**बीमारी व इसके कारण:** यह बीमारी पागल कुत्ते या बिल्ली जाति के जीवों के काटने से होती है। हिमाचल प्रदेश में वर्ष 2003 से 2006 तक इस बीमारी के तीन प्रकोप दर्ज हुए है।

**पशुओं की प्रजाति:** प्रत्येक जाति के पशु मुख्यतः गाय, भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ते, सुअर इत्यादि इससे ग्रसित होते हैं।

**मुख्य लक्षण:** इस बीमारी के लक्षण काटने के बाद 10 दिनों के भीतर कभी नहीं दिखाई पड़ते, यह उस अवधि 15 से 20 दिन या अधिक भी हो सकती है। यदि पशु के स्वभाव में परिवर्तन हो, जैसे दूसरे जानवरों को डराना या काटने की इच्छा, अथवा खाने–पीने में असमर्थता हो, पशु दाँत दबाता रहे, अधिक लार गिराए या पिछली टांगों का लकवा हो जाए तो पशु पागलपन से ग्रसित हो सकता है। इस बीमारी से पशु की मृत्यु तक हो सकती है।

**रोकथाम व ईलाज:** पालतू पशुओं व बिल्लों को बचाव का टीका लगवाएं। घाव को साबुन से धोकर नाईट्रिक एसिड लगाएं। ऐन्टी रेबीज के टीके लगवाएं।

### दाद या लत

**बीमारी व इसके कारण:** यह गोल चक्र जैसा प्रायः बढ़ते हुए आकारों में देखने को मिलता है तथा फफूंद के कारण होता है। ग्रसित पशु के सीधे सम्पर्क में आने पर या घावों से गिरे हुए बालों इत्यादि द्वारा फैलता है।

**पशुओं की प्रजाति:** हर एक जाति के पशु मुख्यतः गाय, भैंस, भेंड़ इत्यादि में होता है।

**मुख्य लक्षण:** यह रोग शुरू–शुरू में एक गोलाकार जैसा झड़े बालों वाले स्थान के रूप में त्वचा पर दिखाई पड़ता है। गोलाकार के भूरे रंग के उभरे हुए सूखे जख्म, चेहरे, गर्दन, आँखों के बीच, ऊपर व नीचे दिखाई पड़ता है। प्रायः जख्मों में खुजली होती है तथा उस स्थान को पशु बार–बार रगड़ता है।

**रोकथाम व इलाज:** रोगी पशु को अन्य पशुओं से अलग रखें। साफ सफाई का ध्यान रखें। जख्म पर ऐंटीफंगल मरहम का प्रयोग करें।

### छोटी माता या पौक्स समूह

**बीमारी व इसके कारण:** प्रत्येक प्रजाति के पशु मुख्यतः गाय, भैंस, बकरी, भेड़ इत्यादि में होती है।

**मुख्य लक्षण:** थनों पर लालगी आ जाती हैं तथा थनों की त्वचा उखड़ने लगती है। यदि कहीं छाले हो तो उनके फटने पर जख्म व स्राव होता है। कभी–कभी यह लक्षण शरीर के निचले हिस्से पर जहाँ बाल कम हो, वहाँ भी दिखाई देते हैं।

**रोकथाम व इलाज:** इस बीमारी से ग्रसित पशुओं को अलग–अलग स्थान पर रखें व उनकी देखभाल करें। थनों की सफाई का खास ख्याल रखना चाहिए तथा उन पर जीवाणुनाशक मरहम दिन में 3 से 4 बार लगाएं। नवजात पशु को सीधे थनों से दूध न पिलाएं।

## हिमाचल प्रेदश के पशुओं में उभरती हुई बीमारियाँ

साल 2003 के बाद, हि. प्र. पशु पालन विभाग के द्वारा उपलब्ध जानकारी के मुताबिक मुख्यतः निम्नलिखित बीमारियां सामने आ रही हैं।

### ग्लैंडर्स

हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिले में सन् 2007 में इस बीमारी का प्रकोप दर्ज किया गया।

**बीमारी व इसके लक्षण:** यह बीमारी बुरकहोलडेया मेलिआई नामक जीवाणु से होती है। यह बीमारी आमतौर पर जीवाणुओं से दूषित भोजन व पानी से होती है।

**पशुओं की प्रजाति:** यह बीमारी मुख्यतः घोड़ों, खच्चरों, और गधे में होती है। यह कुत्तों, बिल्लिओं और बकरियों जैसे अन्य पशुओं द्वारा अनुबंध किया जा सकता है।

**मुख्य लक्षण:** खांसी, बुखार, नाक से स्राव व सेप्टिसीमिया इस बीमारी के लक्षण है। नाम और चमड़ी पर पिंड विकास हो जाता है। पशुओं की महीने के भीतर मृत्यु हो जाती है।

**रोकथाम व इलाज:** मेलिन परीक्षण करवाएं तथा संक्रमित पशुओं को अन्य पशुओं से अलग कर दें। सभी दूषित क्षेत्रों की सफाई कीटाणुनाशक (1.5 प्रतिशत फोरमलिन या 2 प्रतिशत आयडोफोर) से करें।

## इक्वाइन इन्फलूएंजा

हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर, कांगड़ा और हमीरपुर जिलों में सन 2008 में इस बीमारी के तीन प्रकोप दर्ज किए गए हैं।

**बीमारी व इसके लक्षण:** यह बीमारी इन्फलूएंजा ए नामक विषाणु से होती है। यह बीमार पशुओं के नाक के स्रावों से फैलती है।

**पशुओं की प्रजाति:** यह रोग मुख्यतः घोड़ों, खच्चरों और गधे में होता है। बुखार (41.1° सें. ग्रे.) सूखी खांसी, नाक से स्राव, पशुओं को भूख कम होना, कमजोरी इस बीमारी के लक्षण है। इस बीमारी की अवधि 1 से 3 दिन है।

**रोकथाम व इलाज:** साफ सफाई का ध्यान रखें व जानवरों में बचाव का टीका लगवाएं। संक्रमित पशुओं को अन्य पशुओं से अलग कर दें और ऐनटीबायटिक का टीका लगवाएं।

## भेड़ व बकरी में चेचक

हिमाचल प्रदेश में सन 2009 से इस बीमारी के दस से भी अधिक प्रकोप दर्ज किए गए हैं।

**बीमारी व इसके लक्षण:** यह बीमारी कैपरीपॉक्स नामक विषाणु से होती है। यह बीमार जानवरों के साथ सम्पर्क में आने से एयरोसोल द्वारा होती है। संक्रमित पशुओं की लार, नाक व आँख का स्राव, दूध, मूत्र और मल से यह विषाणु बीमारी फैलाता है।

**मुख्य लक्षण:** संक्रमित पशु में बुखार 40° से. ग्रें. तक होता है। नाक व आंख से स्राव व श्वास की दर में वृद्धि हो जाती है। प्रभावित पशु की भूख कम हो जाती है और वह धनुषाकार पीठ के साथ खड़ा होता है। होठों के आसपास घाव, शुरूआत में बगल में लालगी होती है और बाद में घाव हो जाता है। पूँछ पर भी घाव हो जाते हैं।

**रोकथाम व इलाज:** बीमार जानवरों को अन्य पशुओं से अलग कर दें। सभी दूषित क्षेत्रों की सफाई कीटाणुनाशक से अच्छी तरह से करें। पशुओं में बचाव का टीका लगवाएं।

☆☆☆☆☆

# गुनिया फाउल के प्रमुख रोग एवं आर्थिक ब्यौरा

*बृजेश सिंह, एस के सिंह एवं अनिल कुमार*
*गोविन्द वल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय, पन्तनगर (उत्तराखंड)*

कुक्कुट की अन्य प्रजातियों में बत्तख, गुनिया फाउल, बटेर इत्यादि प्रमुख हैं। पंजाब, हरियाणा में चित्तरा, उत्तरी मैदान में तितारी तथा पेनसुलर भारत में चाइना मुर्गी इत्यादि नामों से पहचाने जाने वाली गुनिया फाउल एक महत्वपर्ण आमदनी के स्रोत के रूप में कम खेती वाले किसानों के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। अर्द्धसघन पद्धति में गुनिया फाउल एक ऐसा पक्षी है जो कम लागत में अधिक आय दे सकता है। गुनिया फाउल मुर्गियों की तुलना में परिस्थिति से अधिक संघर्ष करने वाली होती है तथा इसमें बीमारियाँ कम लगती हैं। इसके पालन में बहुत अधिक जानकारी की आवश्यकता नहीं होती तथा लागत भी मुर्गी पालन की तुलना में कम लगती है। ये पक्षी किसी भी वातावरण व जलवायु में रह सकते हैं। किसी विशेष तरह के घर की आवश्यकता नहीं होती। अफलाटौक्सिन को सहन करने की क्षमता मुर्गियों से ज्यादा होती है। गुनिया फाउल के प्रमुख रोगों एवं उनके उपचार का विवरण एवं गुनिया फाउल पालन का आर्थिक विश्लेषण इस लेख में भी प्रस्तुत् किया जा रहा है।

## गुनिया फाउल के प्रमुख रोग और उनकी रोकथाम

वैसे तो गुनिया फाउल की रोग प्रतिरोधक क्षमता अन्य कुक्कुटों की तुलना में काफी अधिक होती है तथा साथ ही साथ विविध परिस्थितियों में भी ये अधिक सहनशील होती है तथा इसको चराई आधारित अर्द्धसघन पद्धति पर पाया जा सकता है। ये देखा गया है कि शुरूआत में गुनिया फाउल में मृत्यु दर अन्य कुक्कुटों की अपेक्षा अधिक होती है।

गुनिया फाउल में लगने वाली बीमारियों को हम मुख्यतः दो भागों में विभक्त करते हैं:

### (1) असंक्रामक तथा अल्पता बीमारियां

गुनिया फाउल जंगली प्रजाति का पक्षी होने के कारण अधिक संवेदनशील होता है। शुरुआत में मृत्युदर समूह में अधिक भीड़, संवेदनशीलता, ठंडक, अधिक गर्मी तथा अधिक सक्रियता के कारण होती है। इनके कीट्स की मृत्युदर पर आकस्मिक भोजन परिवर्तन, भूख, चूंजों का सूखना, ठण्डा वातावरण तथा अन्य प्रबन्धकीय कारको का भी प्रभाव पड़ता है। अधिक तापक्रम, आद्रता, वातावरणीय दबाव तथा अन्य प्रकार के व्यवधान जैसे दवायें देने में गलती, नोचना व हानिकारक गैसें (अमोनिया व कार्बन मोनो आक्साइड) भी मृत्यु दर को बढ़ाने में अहम् भूमिका निभातें हैं। स्वजातीय भक्षण तथा बिछाली भक्षण भी शुरूआत में मृत्युदर को बढ़ाते हैं। खनिज लवण तथा विटामिन्स की कमी से भी कीट्स में विभिन्न प्रकार के असंक्रामक रोग लग जाते हैं।

### निवारण

1. भीड़ नियंत्रित रखनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि हमें बाड़ें में क्षमता से अधिक कीट्स नहीं रखने चाहिए। इस प्रकार हम घुटन तथा भोजन–पानी की कमी से होने वाली मृत्युदर को कम कर सकते हैं।
2. इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वजन करते समय तथा बाड़ा परिवर्तन करते समय पक्षी उत्तेजिन न हो।
3. पक्षियों को संतुलित तथा पर्याप्त मात्रा में राशन तथा पानी मिलना चाहिए। इसके साथ–साथ राशन तथा प्रबन्धकीय व्यवस्था में आकस्मिक परिवर्तन नहीं करना चाहिए।
4. पक्षियों को शोर शराबे से दूर रखना चाहिए।
5. वातावरणीय अधिक गर्मी तथा इसके तुरन्त बाद अधिक सर्दी न हो इसका ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इससे प्रथम सप्ताह में काफी मृत्यु हो सकती है।

6. दवा देने में गलती न हो इसके लिए आवश्यक है कि दवाओं का पूर्ण विवरण रखना चाहिए।
7. हानिकारक गैसों को निकालने के लिए उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
8. पंखों तथा नाखूनों की कटाई–छँटाई करने से भी नोचने की घटनाओं को रोका जा सकता है। साथ ही साथ चोटिल पक्षी को झुण्ड से निकाल देना चाहिए।
9. खनिज लवण तथा विटामिन्स प्रचुर मात्रा में देना चाहिए।

## (2) संक्रामक बीमारियाँ

गुनिया फाउल में अब तक निम्न मुख्य विषाणु, जीवाणु तथा परजीवी जनित बीमारियाँ देखी जा चुकी है:–

1. **माइक्रोबीअल बीमारियाँ–** खराब सफाई तथा उच्च आद्रता की दशा में स्टेफाइलोकोकस औरियस, ई. कोलाई तथा स्ट्रेप्टोकोकस प्रजाति के जीवाणु अपनी सक्रियता बढ़ाकर संक्रमण को बढ़ावा देते हैं। साहित्य में इन्हाइटिस का भी उल्लेख मिलता है। लेकिन इसका वाहक अभी तक पहचाना नहीं गया है। साल्मोनिला टाइफीन्यूरम तथा अन्य साल्मोनिला प्रजाति संक्रमण से उच्च मृत्युदर प्राप्त होती है। विभिन्न असामान्य दशाओं में ई. कोलाई अन्य रोगाणुओं के साथ संक्रमण फैलाता है तथा मुख्य लक्षण जैसे दस्त, जोड़ो पर सूजन, खराब वृद्धि तथा अन्त में मृत्यु दर में वृद्धि आदि दिखाई देते हैं।
2. **विषाणु जनित बीमारियाँ–** ये देखा गया है कि गुनिया फाउल अधिक खतरनाक विषाणु जनित बीमारियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होती है जैसे ब्रांकाइटिस, लेरिंगोट्रेकाइटिस, मैंरेक्स और ल्यूकोसिस इत्यादि। गुनिया फाउल में अन्य कुक्कुट की अपेक्षा रानीखेत बीमारी के प्रति भी अधिक प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता पायी जाती है। इसमें एन्ट्राइटिस बीमारी का उल्लेख पाया गया है। लेकिन इसका रोग वाहक ज्ञात नहीं है।
3. **माइकोटिक बीमारियाँ–** प्रायः मोल्ड के द्वारा फैलने वाली बीमारियों के प्रति गुनिया फाउल अधिक संवेदनशील होती है। सामान्यतः बाद की अवस्था की तुलना में ब्रूडर अवस्था में मृत्यु दर काफी पायी जाती है। पक्षियों को प्रतिजैविकी देने के बाद भी यदि घर में जल निकास की अच्छी व्यवस्था नहीं है तथा राशन एस्परजिलोसिस तथा कैन्डीडोसिस युक्त है, तो बीमारियों के फैलने की संभावना बनी रहती है।
4. **प्रोटोजोअन संक्रमण–** काकसीडियोसिस प्रोटोजोआ एक जानी पहचानी समस्या है। इसकी दो उपजातिया इमीरिया नूमिड़ा तथा इमीरिया ग्रीनरी ज्यादा प्रभावशाली है। इसके अण्डाणु पक्षियों के मल में पाये जाते है। लेकिन इससे होने वाली मृत्यु दर काफी कम होती है। गुनिया फाउल, मुर्गियों की तुलना में कम संवेदनशील होती है। इसके अलावा हैक्जेमाइटसिस और ट्राइकोनिएसिस प्रोटोजोआ भी पाये जाते है।
5. **परजीवी संक्रमण–** विभिन्न प्रकार के कृमि भी सक्रिय होते हैं। यह दशा मुख्य रूप से खराब सफाई के कारण उत्पन्न होती है। इसके साथ साथ फीताकृमि अधिक हानि पहुँचाते हैं। घरेलू दशा में लाइस भी हानिकारक सिद्ध होते हैं।

## उपचार और रोकथाम

गुनिया फाउल में स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकतायें मुर्गियों के समान ही हैं। सघन प्रबन्ध दशाओं में बीमारियों की रोकथाम बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके लिए हमें कीट्स तथा अण्डे देने वाले पक्षियों का चुनाव सावधानी पूर्वक करना चाहिए। पक्षियों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि उन्हें पर्याप्त घर, संतुलित राशन तथा उचित सफाई उपलब्ध करायी जाए। किसी भी रोग की शीघ्र पहचान हमें बीमारी से होने वाली हानि से बचा सकती है। जीवाणु जनित रोगों से बचाने के लिये हमें आवश्यक प्रतिजैविकी, फीड एडिटिव अथवा पानी में मिलाने वाली दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। सामान्यतः मुर्गियों के समान पिपरजिन और टेट्रामाइसोल एन्थेल्मिन्टिक्स गुनिया फाउल में प्रभावी सिद्ध होते है। गुनिया फाउल में टीकाकरण एक दिन के कीट्स में त्वचा द्वारा इन्ट्रानेजल और ओकूलर के द्वारा जैसा कि मुर्गियों में किया जाता है, करना चाहिए। दस सप्ताह पर गुनिया फाउल का पुनः टीकाकरण करना चाहिए।

## गुनिया फाउल पालन का आर्थिक ब्यौरा

लाभ हानि का आंकलन गाँव की परिस्थितियों के लिये है, जिसमें इसे 3–4 सप्ताह तक बिछाली पद्धति पर रखने के बाद चराई और घर के बचे अवशेष राशन पर पालते हैं। इसकी मान्य परिस्थितियाँ निम्नवत है–

1. पालनकर्ता के पास पोल्ट्रीघर बनाने के लिये अपनी जमीन है।
2. वह खुद फार्म की देखरेख करेगा।
3. औसतन ब्रूडर ग्रोवर घर में प्रति पक्षी 0.5 वर्ग मीटर फर्श स्थान की आवश्यकता होगी जिसके बनाने में ₹ 70/– प्रति वर्ग फीट खर्चा होगा।
4. सारी सावधानियों के पश्चात् मृत्यु दर 10–15% होगी।
5. पोल्ट्रीघर तथा बर्तनों का मूल्य ह्रास दर क्रमशः 8.5 तथा 15 प्रति वर्ष की दर से होगा।
6. प्रत्येक गुनिया फाउल को 12 सप्ताह तक 2.5 कि. ग्रा. राशन मिलेगा तथा शेष मात्रा चराई से ग्रहण करेगी।
7. राशन की कीमत ₹ 800 प्रति कुन्तल होगी।
8. बिक्रीदर ₹ 50/– प्रति पक्षी होगी।

### व्यय

| 1 | **अचल पूंजी** | **धनराशि (₹)** |
|---|---|---|
| (1) | पोल्ट्री भवनः 0.5 वर्गमीटर/पक्षी की दर से 250 पक्षी के लिए 125 वर्ग फीट ₹ 70 प्रति वर्ग फीट की दर से | 8750.00 |
| (2) | उपकरणों की कीमत (ब्रूडर, खाने के बर्तन, पानी के बर्तन इत्यादि) ₹ 5.0 प्रति पक्षी की दर से | 1250.00 |
| | **कुल** | **10000.00** |
| (3) | (अ) मूल्यह्रासः पोल्ट्री भवन पर 8.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ₹ 8750/– के लिये | 186.00 |
| | (ब) बर्तनों पर 15 प्रतिशत की दर से रू 1250/– के लिये | 47.00 |
| | (स) पूंजी पर ब्याज रू. 10000 पर तीन महीने के लिये 13⅓ प्रतिशत की दर से | 400.00 |
| | **कुल** | **633.00** |
| | **कुल अचल पूंजी** | **10633.00** |

**2 चल पूंजी**

| | |
|---|---|
| (1) 250 चूजों की कीमत दर रू. 6.00 प्रति चूजा | 1500.00 |
| (2) राशन : 250 गुनिया फाउल के लिये 2.50 किलोग्राम प्रति पक्षी की दर से 625.00 कि. ग्रा. ₹ 8/कि. ग्रा. की दर से | 5000.00 |
| (3) बिजली, दवा एवं परिवहन दर ₹ 2.0 प्रति पक्षी | 500.00 |
| **कुल चल पूंजी** | **7000.00** |
| **कुल पूंजी खर्च** | **17633.00** |

## कुल आय

| | |
|---|---|
| (1) 220 गुनिया फाउल की ब्रिकी दर ₹ 50/– पक्षी (मृत्युदर 12.5 प्रतिशत) | 11000.00 |
| (2) खाद 1.5 कि. ग्रा. प्रति पक्षी की दर से 330 कि. ग्रा. बिक्रीदर ₹ 40/– प्रति कुन्तल | 132.00 |
| **कुल आय** | **11132.00** |
| **सकल लाभ** | |
| कुल आय से चल पूंजी घटाने पर | |
| एक फसल के लिये (11,132–7000) | 4132.00 |
| दो फसल के लिये | 8264.00 |
| तीन फसल के लिये | 12396.00 |

## शुद्ध लाभ

| | |
|---|---|
| सकल आय से मूल्य ह्रास निकालने पर | |
| एक फसल के लिये (4132–633) | 3499.00 |
| दो फसल के लिये | 6998.00 |
| तीन फसल के लिये | 10497.00 |
| शुद्ध लाभ 250 गुनिया फाउल से (तीन महीने में) | 3499.00 |
| शुद्ध लाभ प्रति पक्षी (तिमाही) | 13.99 |
| | (लगभग ₹ 14.00) |

## अनुमानित आय–व्यय का ब्यौरा

250 गुनिया फाउल की दो या तीन फसल वर्ष भर में संभव है। जिसे 12–14 सप्ताह का समय तथा उत्पादन पद्धति अर्द्धसघन (राशन 50 प्रतिशत, चराई 50 प्रतिशत) होगी। इस प्रकार हम देखते है कि एक वर्ष में एक परिवार के एक सदस्य के लगभग 4 घंटे प्रतिदिन के हिसाब 182.5 दिन को रोजगार मिला तो ₹ 50 प्रतिदिन के हिसाब से ₹ 9125 प्राप्त होगें। जबकि इतने ही कार्य अवधि में उसे ₹ 12396 प्राप्त हो सकते हैं। अतः गुनिया फाउल एक अच्छा रोजगार है। अगर एक परिवार गुनिया फाउल पालन को सह व्यवसाय के तौर पर अपनाता है, जिसमें कि इसके परिवार के सदस्यों के खाली समय का सदुपयोग किया जा सकता है तो उस परिवार के लिये ₹ 12396 की अतिरिक्त सलाना आय होगी अर्थात् ₹1000 प्रति माह की अतिरिक्त आय।

☆☆☆☆☆

# खुरपका एवं मुंहपका टीका: पशु संरक्षण में सहायक

*[1]गोपाल रामदासजी गोवने, [2]एम शंकर एवं [2]ए के शर्मा*

*[1]केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान अबिकानगर, मालपुरा, जिला टोंक (राजस्थान)*

*[2]भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, मुक्तेश्वर (उत्तराखण्ड)*

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत में लगभग 72 प्रतिशत लोग कृषि एवं उससे संबंधित व्यवसाय पर निर्भर होते हैं। दुग्ध उत्पादन 2000-2001 से 2006-2007 तक प्रतिवर्ष 33 लाख टन की गति से बढ़ा है। भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का अहम् महत्व हैं। भारत में पशुधन 52% लोगों को सुरक्षा प्रदान करता है। आने वाले समय में पशु उत्पाद की आवश्यकता तेजी से बढ़ने वाली हैं, क्योंकि जमीन सीमित है, और जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। भविष्य की आवश्यकताओं को देखते हुये पशुओं की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना एवं बीमारियों को रोकना अत्यंत आवश्यक कदम होना चाहिये। पशुओं की उत्पादन क्षमता को सबसे बड़ा खतरा बीमारियों से होता है। अगर हम मुंहपका एवं खुर पका रोग जैसी बीमारियों का संक्रमण होने से पशुओं का बचाव करें तो उत्पादन क्षमता में काफी सुधार हो सकता है।

पशुओं में खुरपका एवं मुंहपका रोग एक विषाणु या वायरस द्वारा होता है। मुंहपका–खुरपका रोग किसी भी उम्र की गायों एवं उनके बच्चों में हो सकता हैं इसके लिए कोई भी मौसम निश्चित नहीं है। कहने का मतलब यह है कि यह रोग कभी भी गांव में फैल सकता है। हालांकि गायों में इस रोग से मौत तो नहीं होती फिर भी दुधारू पशु सूख जाते हैं। इस रोग का क्योंकि कोई इलाज नहीं है इसलिए रोग होने से पहले ही उनके टीके लगवा लेना फायदेमन्द है।

इस रोग के आने से पशु को तेज बुखार हो जाता है। बीमार पशु के मुंह, मसूड़े, जीभ के ऊपर नीचे होंठ के अन्दर का भाग खुरों के बीच की जगह पर छोटे–छोटे दाने उभर आते हैं, फिर धीरे–धीरे ये दाने आपस में मिलकर बड़ा छाला बनाते हैं। समय पाकर यह छाले फूल जाते हैं और उनमें जख्म हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में पशु जुगाली करना बंद कर देता है। मुंह से लार गिरती है। पशु सुस्त पड़ जाते हैं और कुछ भी नहीं खाता–पीता है। खुर में जख्म होने की वजह से पशु लंगड़ाकर चलता है। पैरों के जख्मों में जब कीचड़ मिट्टी आदि लगती है, तो उनमें कीड़े पड़ जाते हैं और उनमें बहुत तेज दर्द होता है। पशु लंगड़ाने लगता है। दुधारू पशुओं में दूध का उत्पादन एकदम गिर जाता है। वे कमजोर होने लगते हैं। समय पर इलाज होने पर छाले व जख्म भर जाते हैं, परन्तु संकर पशुओं में यह रोग कभी–कभी मौत का कारण भी बन जाता है।

भारत में 2009-10 में कुल 799 प्रकोप हुये, जो पिछले कुछ सालों की तुलना में काफी कम है। यह रोग पिकोरनाविरीडे समुदाय के ऑप्थोवायरस समूह का है जिसके 7 प्रकार (ओ, ए, सी, एशिया–1, सेट–1, 2, 3) होते हैं। भारत में इन सात प्रकारों में से प्रायः 3 प्रकार (ओ, ए, एशिया –1) पाये जाते हैं। इस बीमारी को रोकने का सर्वश्रेष्ठ उपाय सिर्फ टीकाकरण ही है। हाल ही में हुये अनुसंधान से यह पता चलता है, कि टीकाकरण से सभी जानवरों को एक जैसी प्रतिरोधक क्षमता नहीं मिलती है। खुरपका एवं मुंहपका रोग खुरदार जानवरों में सबसे अधिक संक्रामक रोग है। भारत में त्रिसंयोजक निष्क्रिय (ओ, ए, सी, एशिया–1) टीकाकरण इस रोग की रोकथाम का मुख्य तरीका है। किन्तु इसका असर अल्पावधि तक ही रह पाता है और पशु समूह में इस टीके की प्रतिक्रिया अलग–अलग देखी गई है। इस अध्ययन का उद्देश्य एफ. एम. डी. टीका प्रतिक्रिया के लिये पर्यावरण एवं आनुवंशिकी कारकों को खोजना है।

हमने अपने अनुसंधान में देसी एवं संकर गायों में टीकाकरण करवाया और उनमें अंतर देखा। यह अनुसंधान 'भारतीय पशु चिकित्सा एवं अनुसंधान संस्थान' के मुक्तेश्वर केन्द्र पर हुआ। इसमें 395 सीरम सैम्पल की जाँच की गई, जो कि टीकाकरण के बाद इकट्ठे किये गये। इस अध्ययन से यह पता चला कि टीके की प्रतिक्रिया पशु समूह में भिन्न थी। संकर समूह में सीरोटाइप – ए और एशिया–1 में मौसम का प्रभाव देखा गया। इस अध्ययन में यह भी पाया गया की टीकाकरण की वृद्धि से जानवरों को ज्यादा सुरक्षा मिलता है। पहले तीन माह के दुधारू पशु खुरप का मुँहपका के टीके के लिये अच्छी प्रतिक्रिया नहीं दे पाये। संकर एवं देसी

जानवरों में भी टीके की प्रतिक्रिया में कोई अंतर नहीं पाया गया। जनुकिय विविधता सूचकांक (हेरिटेबिलिटी) सीरोटाईप (ओ), (ए) एवं (एशिया–1) में क्रमशः 0.71±0.07, 0.03±0.05 और 0.05±0.06 पाया गया।

वायरस के शरीर में संक्रमण पश्चात वह एंटीजन प्रेसेंटींग कोशिकाओं द्वारा बी कोशिकाओं को प्रदान होता है। इसमें एम.एच.सी. प्रथिन की मुख्य भूमिका होती है। एम.एच.सी. में विविधता वायरस की पकड़ को निर्धारित करती है। इस संबंध में हमने एम.एच.सी. के एक मुख्य जीन डी.आर.बी.–3 का अध्ययन किया। डी.आर.बी.–3 जीन के विश्लेषण से यह देखा गया की संकर समूह तथा हरियाना जाति के पशु आपस में जनुकीय स्तर पर काफी समान थे। एलील 1501, 201 और 801 एफ.एम.डी. टीके की अच्छी प्रतिक्रिया के लिए कारक पाये गये तथा एलील 701 और 1103 टीके की निम्नतम प्रतिक्रिया के लिए कारक पाये गये। अध्ययन से यह भी पता चला कि, जिन पशुओं में एलील 1501 मौजूद था, वह टीके से हमेशा सुरक्षित रहे और वह पशु जिनमें एलील 1103 था, वह टीके से सुरक्षित नहीं रहे। एलील के बदलाव से मुख्य अमीनों अम्ल प्रतिस्थापन देखा गया जिससे पेपटाईड बंधन जेब में बदलाव आये। रीएल टाईम प्रयोग से पता चला की टीकाकरण के 28 दिन बाद आई.एल.–6 और आई.एल.–21 की अभिव्यक्ति ज्यादा रही। सुरक्षित बछड़ों में असुरक्षित बछड़ों की तुलना में आई.एल.–21 की अभिव्यक्ति संख्यानुसार अधिक पायी गई।

अनुसंधान से यह पता चलता है कि बार बार टीकाकरण पशुओं को संक्रमण से बचाने मे मदद करता है। पशुओं का चयन भले ही कायीकी से कठिन हो, परन्तु अगर डी.आर.बी. अलील 1501, 201 एवं 801के लिए चयन हुआ, तो पशु समूह में टीकाकरण से अच्छी सुरक्षा प्राप्त होगी। हम आई.एल.–21 को टीके के साथ सहायक प्रथिन के रूप में अगर दें, तो हो सकता है कि पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता में काफी वृद्धि आये। इन परिणामों को ध्यान में रखते हुए यह भी जरूरी है कि ऐसे अनुसंधान पुनः दोहराये जाये तथा विभिन्न जाति के गायों में और भिन्न क्षेत्रों में भी कराये जाये जिससे संयोग से सहसंबंध की शंका भी दूर हो।

## आभार

लेखकगण इस अनुसंधान कार्य में आर्थिक एवं वैज्ञानिक तरीके से मदद के लिए भा. कृ. अनु. प. के संस्थान भा. प. अनु. सं. तथा पी. डी. एफ. एम. डी. के निदेशक महोदय के आभारी हैं।

☆☆☆☆☆

# पशु चिकित्सा हेतु घरेलू औषधियां और उनका प्रयोग

*सत्येन्द्र पाल सिंह*[1] *एवं संजीव सिंह* [2]
[1]*कृषि विज्ञान केन्द्र, आर.बी.एस. कालेज, बिचपुरी, आगरा (उत्तर प्रदेश)*
[2]*राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)*

आधुनिक पशु चिकित्सा विज्ञान ने भले ही कितनी ही तरक्की क्यों न कर ली है, योग्य पशु चिकित्सकों से लेकर एक से एक अच्छी ऐलोपेथी दवायें बाजार में उपलब्ध हैं। बावजूद इसके इक्कीसवीं सदी में भारत के ग्रामीण अंचलों में आज भी पंरपरागत घरेलू चिकित्सा तकनीक का पशु चिकित्सा में बखूबी प्रयोग किया जा रहा है। ग्रामीण अंचल में सरलता से उपलब्ध, सस्ती और विश्वसनीय घरेलू देशी औषधियों से पशु स्वास्थ्य लाभ में आशातीत परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। इसी को देखते हुये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, किसानों–पशुपालकों द्वारा प्रयोग की जा रही पंरपरागत तकनीकी (आईटीके) के सफल प्रयोगों को मान्यता दे दी है। इसके अलावा ग्रामीण अंचल में पशु रोगों का घरेलू उपचार भी सदियों से काफी लाभप्रद सिद्ध हो रहा है। वैसे भी ग्रामीण परिवेश में पशुपालन से विशेष रूप से गरीब, किसान, भूमिहीन, मजदूर आदि लोग जुड़े हुये हैं। ऐसे लोगों के लिये यह घरेलू चिकित्सा काफी मायने रखती है। इस लेख के माध्यम से ग्रामीण अंचल में पशु चिकित्सा, अधिक दुग्ध उत्पादन लेने एवं पशुओं के बेहतर स्वास्थ्य के लिये प्रयोग में लायी जा रही जड़ी–बूटियों एवं घरेलू नुस्खों का वर्णन किया जा रहा है। जिसको अमल में लाकर कम खर्चे में पशुओं का स्वास्थ्य बेहतर बनाये रखने के साथ उनसे अधिक से अधिक उत्पादन और आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है।

**अजीर्ण :** अजीर्ण पाचन क्रिया का अपच सम्बन्धी एक विकार हैं। पशु इसमें दाना–पानी छोड़ देते हैं और बैचेन रहकर कमजोर होते चले जाते हैं। उपचार के लिये गाय, भैस, घोड़ा, ऊंट आदि बड़े पशुओं को 15 से 30 ग्राम तथा छोटे पशु बकरी, भेड़, बछड़ा आदि को 5 से 15 ग्राम तक कुटकी चूर्ण मठ्ठा या पानी में घोलकर नाल द्वारा पिलाना चाहिये। एक अन्य औषधि भृंगी या कोषिया की 30 से 60 ग्राम दवा बड़े पशुओं तथा 10 से 20 ग्राम दवा छोटे पशुओं को देनी चाहिये। चिरायता चूर्ण की इतनी ही मात्रा 500 मिली पानी में उबालकर इसका काढ़ा बनाकर दिया जा सकता है। इसके अलावा सोंठ, काला नमक, नौसादर, चिरायता, पीपल, कुटकी तथा मैगसल्फ (सभी 15 ग्राम) को पीस लें और 2 ग्राम मात्रा सुबह मठा या पानी के साथ पिलायें। इससे पशुओं की भूख बढ़ेगी और वह स्वस्थ रहेगा। कुटकी एक विषैला पदार्थ है, अतः इसके प्रयोग में सावधानी बरतनी चाहिये। इसके अलावा नमक (200 ग्राम), मैगसल्फ (250 ग्राम), सोंठ चूर्ण (30 ग्राम) एवं शीरा (500 ग्राम) को आवश्यकता अनुसार पानी में मिलाकर एक खुराक में जवान पशु को एवं आधी और तिहाई मात्रा छोटे पशु को दी जा सकती है।

**अफारा :** अधिक मात्रा में हरा चारा–दाना आदि खा लेने से पेट में हानिकारक गैसों के बनने से पशु का पेट फूल जाता है। तीव्रता की स्थिति में तत्काल चिकित्सा उपलब्ध नहीं होने पर आधा से तीन घंटे के भीतर पशु की मौत तक हो जाती है। निदान हेतु पशु को तेल पिलायें। पेट की बायीं कोख पर दबाव डालकर खूब मालिस करें। रूमेन में खाद्य पदार्थों का किण्वन रोकने के लिये टिंचर हींग 15 मि. ली., स्प्रिट अमोनियां एरौमैटिक 15 मि. ली., तारपीन का तेल 40 मि. ली. एवं अलसी का तेल 500 मि. ली. को मिलाकर एक खुराक बना लें। वयस्क पशु को एक बार में पूरी खुराक एवं छोटे पशुओं को आकार और उम्र के अनुसार तिहाई से लेकर चौथाई खुराक देने से तत्काल लाभ के साथ पशु को मरने से बचाया जा सकता है।

**कब्ज :** कब्ज के कारण जब पशु गोबर करना बंद कर दे, तो ऐसी दशा में पेट की सक्रियता बढ़ाना आवश्यक है। इस हेतु 250 ग्राम सादा नमक को आवश्यकता अनुसार शीरे में मिलाकर बड़े पशु को तत्काल चटायें। छोटे पशु को इसकी एक चौथाई मात्रा देनी चाहिये। एक अन्य उपचार में मैगसल्फ 250 ग्राम, सोंठ चूर्ण, 20 ग्राम और शीरा 200 ग्राम को पानी में घोलकर बड़े पशुओं को पिलायें। छोटे पशुओं को इसकी एक चौथाई मात्रा दी जा सकती है। इस रोग में अलसी का तेल 250 से 500 मि. ली. बड़े पशुओं तथा 10 से 20 मि. ली. छोटे पशुओं के लिए गुणकारी औषधि है। अरंडी का तेल भी एक प्रभावी रेचक होता है। इसके अलावा ईसबगोल भी मंद रेचक का काम करता है। इस रोग में पशु कमजोर हो जाते हैं। अतः छोटे पशुओं जैसे कट्डा, कट्ड़ी, बछड़ा, लवारे, बकरी, भेड़ आदि को क्रियोलीन तथा फार्मेलीन की 10 बूंदे पानी में मिलाकर पिलाने से काफी आरा मिलता है।

**रूमेन का गुम्ब हो जाना:** रोग के उपचार के दौरान 48 घंटे तक पशु को कुछ भी चारा–दाना नहीं खिलाना चाहिए। इसके बाद पेट साफ करने के लिये निम्न दस्तावर नुस्खा देना लाभकारी रहता है। सादा नमक 200 ग्राम, मैगसल्फ 200 ग्राम, शीरा 150 ग्राम को आवश्यकता अनुसार गुनगुने पानी में एक ही बार में पूरी खुराक जवान पशु को पिलाना पर्याप्त रहता है अथवा 250 ग्राम नमक को 500 ग्राम शीरा में मिलाकर चटनी बनाकर एक ही खुराक में जवान पशु को चटायें। छोटे पशुओं को इन नुस्खों की तिहाई और चौथाई खुराक एक बार में दी जानी चाहिये। इनसे पशु की प्यास बढ़ेगी और दस्त आकर पेट साफ हो जायेगा।

**दस्त:** दस्त की अवस्था में बड़े पशु को कत्था 15 ग्राम, पिसी खड़िया 60 ग्राम, बेलगिरी की चूर्ण 60 ग्राम, अफीम 2 ग्राम, देशी बबूल का गोंद 10 ग्राम को 500 मि. ली. चावल के मांड में मिलाकर दिन में दो से तीन बार देने पर दस्त बंद हो जाते हैं। इस नस्खे में अफीम का प्रयोग सावधानी बतौर करना चाहिये।

**छोटे लवारों एवं बछड़ों के सफेद दस्त:** उपचार हेतु शीशम की पत्तियां छांव में भली प्रकार से सुखाकर बारीक पीस ले, इसमें से 500 ग्राम मात्रा लेकर उसमें हींग 2 ग्राम, बैलगिरी चूर्ण 100 ग्राम एवं कत्था 100 ग्राम के अनुपात में मिलाकर रख लें। जिसमें से 25 से 30 ग्राम मात्रा सुबह शाम दें। इससे लवारों के दस्त बंद होकर काफी लाभ मिलता है।

**गैस:** इस रोग में पशु के पेट में अधिक गैस बनती है। गैस बाहर नहीं निकलने के कारण पेट फूल जाता है और पशु को तकलीफ होती है। बरसात के मौसम में यह रोग पशु को अधिक होता है। रोग की दशा में बड़े पशुओं का 50 मि.ली. तारपीन का तेल, 40 ग्राम हींग का चूरा तथा 100 ग्राम नौसादर को आधा लीटर अलसी के तेल में मिलाकर देने से आशातीत लाभ होता है। छोटे पशुओं को इस नुस्खे की एक चौथाई मात्रा देना लाभकारी रहता है।

**निमोनियां:** इस रोग के उपचार के लिये सोंठ 15 ग्राम, मेथी 30 ग्राम, अजवाइन 10 ग्राम और चाय की पत्ती 30 ग्राम को आधा किलो गुड़ के साथ पानी में उबालकर चाय बनाकर दें। छोटे पशुओं को एक चौथाई मात्रा पर्याप्त रहती है। इसके अलावा पशु के सीने पर लिनीमेंट अथवा तारपीन के तेल की मालिश करके गर्म शिकाई करें। यूकेलिप्टस के तेल की 10 बूंदों को 50 मि. ली. तारपीन के तेल में मिलाकर उबलते पानी में डालकर पशु को बफारा देने से भी काफी राहत मिलती है।

**बुखार:** ज्वर की हालत में 100 ग्राम मैगसल्फ, 10 ग्राम पोटाश नाइट्रेट और 15 ग्राम नौसादर को 250 मिली पानी में घोलकर पिला दें। छोटे जानवरों को एक चौथाई मात्रा देनी चाहिये।

**जेर का रूकना:** जेर नहीं गिरने की दशा में अजवाइन, सोंठ, मेथी प्रत्येक की 15 ग्राम मात्रा आधा किलो गुड़ के साथ एक लीटर पानी में उबालकर पिला दें। जरूरत पड़ने पर चार घंटे बाद इसे पुनः दिया जा सकता है। साथ ही बच्चा देने के बाद मादा पशु को अगले तीन दिनों तक अजवाइन डालकर उबाला गया पानी पीने योग्य ठंडा करके पिलाना चाहिए।

**गर्भाशय की सफाई और दुग्ध वुद्धि हेतु:** गाय–भैंस के ब्याने के बाद गर्भ की सफाई, छटांव एवं क्षमता अनुसार पूरा दूध प्राप्त करने हेतु अजवाइन, काला नमक, मेथी, सोंठ, जीरा, सतावर, मैगसल्फ, हल्दी (प्रत्येक की 100 ग्राम मात्रा) को भली प्रकार पीस कर दो लीटर पानी में घोल लें। इसमें 3 लीटर शीरा तथा 3 किलो पुराना गुड़ को लगभग 3 लीटर पानी में घोलकर मिला दें। तत्पश्चात इस पदार्थ को एक बर्तन में भरकर धीमी आग पर पकाये। पकाते–पकाते जब जब यह पदार्थ एक तिहाई रह जाये, उतारकर ठंडा कर लें। इसकी 10 खुराक बनाकर सुबह–शाम पांच दिनो तक लगातार दें। इससे गर्भाशय की सफाई होकर दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है और पशु समय पर गर्मी पर आकर गर्भ धारण कर लेता है।

**दर्द:** जोड़ों के दर्द की दशा में आक के पत्ते, लहसुन और प्याज के साथ तेल में गर्म करके मालिश करने से लाभ होता है।

**चमड़ी के रोग:** दाद, खाज, खुजली, एक्जीमा आदि की दशा में नीम की पत्तियों अथवा निम्बोली को लहसुन तथा प्याज के साथ पीसकर अलसी के तेल के साथ गर्म करके लगाने पर चमत्कारी लाभ होता है। कार्बोलिक अम्ल तथा अलसी के तेल की बराबर–बराबर मात्रा लगाने पर भी फायदा होता है। गंधक 30 ग्राम, तारपीन का तेल 30 मि. ली., पोटाश बाईकार्ब 15 ग्राम को 200 मि.ली. सरसों के तेल में मिलाकर लगाने से खाज, एक्जीमा शीघ्र ठीक हो जाते हैं। इसके अलावा गंधक और मैग्नीशियम सल्फेट की बराबर–बराबर मात्रा कुछ दिन मिलाकर लगाने से खाज ठीक हो जाती है।

**बदहजमी, गोबर का रूखना एवं हाजमा संबन्धी रोग:** सोंठ 30 ग्राम, अजवाइन 50 ग्राम, काली जीरी 50 ग्राम, मैथी 50 ग्राम, हल्दी 50 ग्राम, काला नमक 50 ग्राम को भली प्रकार से कड़ाही में भून लें। इसके बाद इसमें 250 मि.ली. गर्म किया हुआ सरसों का तेल मिला दें। तत्पश्चात् 200 ग्राम गुड़ व 250 मिली पानी भी मिला दें। एक बार फिर से इन सभी पदार्थो को मिलाने के बाद गर्म कर लें। इसके बाद उतार कर ठंडा करके इसमें 50 ग्राम खाने वाला सोड़ा मिलाकर बड़े पशु को एक खुराक में तथा छोटे पशुओं की आवश्यकता अनुसार तिहाई और चौथाई खुराक में दें।

**गर्भाशय का संक्रमण:** इस रोग हेतु सैमल के पेड़ की छाल एवं गूदा को शीशम, बेर, देशी बबूल एवं नीम के पत्तों के साथ बराबर मात्रा में मिलाकर भलीप्रकार से कूट–पीस लें। इस प्रकार से तैयार दवा को कम से कम 3 से 5 दिन तक सुबह–शाम क्रमशः 200 ग्राम की मात्रा में लगातार देते रहने से काफी फायदा होता है। इसके अलावा इस रोग में आधा–आधा कि.ग्रा. हरे धनिये की पत्तियां सुबह–शाम 4 से 5 दिन खिलाने से भी लाभ होता देखा गया है।

**बकरों का पेशाब बंद होना:** मांस के लिये बकरों को तैयार करने के दौरान अधिक मात्रा में दाना आदि खिलाने से कई बार किडनी में पत्थरी जैसी समस्या बन जाती है। जिसमें बकरों का पेशाब बंद हो जाता है। ऐसा होन पर नौशादर की 3 से 5 ग्राम मात्रा प्रतिदिन 5 से 7 दिन तक खिलाने से यह समस्या ठीक हो जाती है।

**एसिडिटी एवं गैस की समस्या हेतु:** कई बार पशुओं के अधिक चारा–दाना खाने पर अथवा पेट एवं आहार नाल में पी. एच. स्तर गड़बड़ होने की दशा में तेजाब (एसिडिटी) और गैस की समस्या पैदा हो जाती है। ऐसी शिकायत होने की दशा में 50 ग्राम सोड़ा बाईकार्ब (खाना सोडा) तथा 50 ग्राम मैगसल्फ की खुराक बनाकर 5 से 10 दिन तक बड़े पशु को लगातार खिलाने से यह समस्या पूरी तरह ठीक हो जाती है। छोटे पशुओं को आवश्यकता अनुसार खुराक देनी चाहिये।

**देशी खनिज लवण:** पशुपालक दूध उत्पादन में बढ़ोत्तरी एवं पेट की समस्या आदि के निदान हेतु घर पर ही देशी खनिज लवण मिश्रण बनाकर दे सकते हैं। इस हेतु खड़िया 5 कि. ग्रा., जीरा 250 ग्राम, मेथी 1 कि.ग्रा., सोंठ 300 ग्राम, हल्दी 300 ग्राम, सतावरी 300 ग्राम, मैगसल्फ 250 ग्राम, काला नमक 1 कि. ग्रा. एवं सेंदा नमक1 किग्रा। इन सभी पदार्थों को भली प्रकार से पीसकर एक जगह मिलाकर रख लें। इसमें से हर रोज 50 से 70 ग्राम मात्रा खिलाने से दूध उत्पादन में बढ़ोत्तरी के साथ अन्य समस्या में लाभ होता है।

**भूख बढ़ाने, पेट के कीड़े मारने एवं दूध बढ़ाने हेतु:** इस हेतु हींग 1 तोला, हल्दी 50 ग्राम, सादा नमक 3 कि. ग्रा., काला नमक 1कि. ग्रा., लाहौरी नमक 500 ग्राम, सेंदा नमक 500 ग्राम, सोंठ 250 ग्राम, अजवाईन 100 ग्राम, पीपल 30 ग्राम, अमर बैल 500 ग्राम (सुखाकर), नौशादर 50 ग्राम, अडियान 1कि. ग्रा., कुटकी 50 ग्राम, आंवला 250 ग्राम (सूखा पाउडर), काली मिर्च 50 ग्राम, बायबिरंग 100 ग्राम, वाईकुम्भा 50 ग्राम, फिटकरी। तोला एवं त्रिफला चूर्ण 1 कि. ग्रा.। सभी पदार्थ को पीसकर एक जगह मिलाकर रख लें। इसमें से 30 से 50 ग्राम मात्रा हर रोज दुधारू पशुओं को खिलाने से पेट के कृमि नष्ट होने के साथ पशु की भूख बढ़ती है। और उसके दूध उत्पादन में वृद्धि होती है।

**पशु को गर्मी में लाने हेतु:** कबूतर की छेर (बीट) 100 ग्राम लगातार 7 से 10 दिन तक खिलाने से मादा गाय–भैंस को गर्मी में लाया जा सकता है।

इस प्रकार से इस लेख में बताये गये देशी दवाओं के नुस्खों एवं आई.टी.के. को प्रयोग में लाकर पशुपालक घर पर ही पशुओं का बेहतर स्वास्थ्य बनाये रखने के साथ उनसे अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकते है।

(लेख में बताई गई देशी दवायें विभिन्न स्रोतों से एकत्र की गई हैं, जिनका प्रयोग सावधानीपूर्वक करने से कई क्षेत्रों के पशुपालक लाभ उठा रहे हैं)

☆☆☆☆☆

# मांस: एक पोषक एवं बहुमुखी आहार

*रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं मधुसूदन टांटिया*
*राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)*

मांस चिरकाल से ही मानव के आहार का एक अभिन्न अंग रहा है, न सिर्फ अपने आप में एक सम्पूर्ण आहार के रूप में अपितु अन्य खाद्य पदार्थों के अंश के रूप में भी। मनुष्य की आनुवंशिक संरचना भी मांस को एक आहार के रूप में समाविष्ट कर चुकी है क्योंकि 40–50 लाख सालों से मनुष्य इसका सेवन कर रहा है। भोजन का मुख्य काम मानव को चयापचय आवश्यकता को पूरा करके पोषक तत्वों को प्रदान करना है। मांस और मांस से बने उत्पाद विश्व के बहुत से भागों में मनुष्य के आहार का प्रमुख भाग हैं। मुख्यतः विकसित देशों में मनुष्य को प्राप्त प्रोटीन में पशु आहार द्वारा प्राप्त प्रोटीन प्रति व्यक्ति सबसे अधिक है। मांस अत्याधिक पोषक एवं बहुमुखी आहार है। क्योंकि यह

1. आसानी से पचने वाले प्रोटीन का स्रोत तो है ही इसमें सभी आवश्यक अमीनो एसिड भी सही मात्रा एवं अनुपात में पाए जाते हैं। यह अमीनो एसिड कोशिकाओं के विकास एवं मरम्मत के लिए अति आवश्यक हैं।
2. मांस पोषक तत्वों से परिपूर्ण भोजन है क्योंकि इससे शरीर के लिए जरूरी सूक्ष्म पोषक तत्वों की प्राप्ति होती है, जैसे कि –फैटी एसिड, विटामिन, खनिज पदार्थ, ऊर्जा एवं पानी, जो कि प्रोटीन, वसा और कोशिका झिल्ली बनाने के लिए बिल्डिंग ब्लॉक का काम करते हैं।
3. मांस विटामिन मुख्यतः बी–समूह का मुख्य स्रोत है, जबकि विटामिन सी तथा वसा–विलेय विटामिन भी कम मात्रा में पाए जाते हैं।
4. मांस से खनिज पदार्थ जैसे– कॉपर, जिंक, सोडियम, पोटैशियम, आयरन एवं फास्फोरस भी प्राप्त होते हैं। इनमें से आयरन तथा जिंक  हीम प्रोटीन से संलग्न होने के कारण शरीर में आसानी से निगमित हो जाते हैं। यह ध्यान योग्य है कि शरीर की सम्पूर्ण आयरन की आवश्यकता आहार से ही पूरी की जा सकती है और मांस आयरन का समृद्ध स्रोत है।

## पशुधन परिदृश्य

भारत में मांस एवं मांस से बने उत्पाद पशुपालन के उपोत्पाद माने जाते हैं, इसलिए मांस उत्पादन, प्रसंस्करण एवं विपणन देश में सदैव उपेक्षित रहे हैं। भारत में मांस का आहार में मुख्य भाग न होने के कारण क्षेत्रीय, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पूर्वाग्रह हैं। परन्तु इन सब कठिनाईयों के बावजूद मांस लगभग 70% भारतीयों के भोजन का हिस्सा है। यह बात अलग है कि कम क्रय शक्ति तथा स्थानीय भोजन की आदतों के कारण अधिकतर लोग कभी कभी ही इसका सेवन करते हैं। भारत में प्रति व्यक्ति मांस की खपत 2.5 कि. ग्रा. प्रतिवर्ष है जबकि विश्व में यह औसत 32 कि.ग्रा. तथा कुछ विकसित देशों में 100 कि.ग्रा. तक है। हमारे देश में बकरी, भेड़ तथा कुक्कुट के मांस को प्राथमिकता दी जाती है तथा गाय और सूअर का मांस बहुत कम और सीमित लोगों द्वारा पसंद किया जाता है। बकरी तथा भेड़ के मांस में अधिक रूचि होने के कारण भी सांस्कृतिक, पारम्परिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति है।

पशुधन के विपणन का क्रम उसी दिन से शुरू हो जाता है जिस दिन पशु (गाय, भैंस, भेड़, बकरी अथवा सुअर) किसान/पशुपालक द्वारा बेच दिया जाता है। यह क्रम मांस प्रसंस्करण पर समाप्त होता है, जिसमें पशु का वध तथा कारकस का छोटे और थोक व्यापारियों को बेचा जाना भी शामिल है। पशुओं को पालने, बेचने तथा मांस के उत्पाद बनाने एवं बेचने की प्रक्रिया में बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार मिलता है। मांस की आवश्यकता तथा व्यापार दोनों ही दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। अतः मांस उत्पादन बढ़ाने की जरूरत और भी बढ़ गई है।

**तालिका 1: भारत में विभिन्न प्रजातियों की संख्या एव मांस उत्पादन**

| पशुधन | संख्या (मिलियन) 2007 | मांस उत्पादन (000 टन) 2010–11 | कुल मांस उत्पादन का हिस्सा (%) |
|---|---|---|---|
| गाय | 199.1 | 211 | 4.31 |
| भैंस | 105.3 | 805 | 16.42 |
| भेड़ | 71.5 | 369 | 7.50 |
| बकरी | 140.5 | 846 | 17.26 |
| सूअर | 11.1 | 402 | 8.20 |
| कुक्कुट | 648.8 | 2193 | 44.80 |

स्रोतः भारत सरकार के पशु पालन, डेयरी विभाग (2012)

## मांस उत्पादन

मांस बहुत ही जल्दी खराब होने वाले खाद्य उत्पादों की श्रेणी में आता है। अतः मांस एवं इससे बनें खाद्य पदार्थों का क्रय, विक्रय एक जटिल कार्य है। भारत जैसे देशों में, जहाँ की जलवायु गर्म तथा नम है एवं यातायात सुविधाओं का अभाव है, यह समस्या और भी बढ़ जाती है। हमारे देश के नीति–निर्माताओं का रवैया भी मांस को एक उपयोगी वस्तु नहीं, बल्कि प्रतिफल मानने का है। घरेलू बाजार में प्रायः ताजा मांस बेचा जाता है। लगभग 2% मांस ही संसाधित मांस उत्पाद बनाने के काम आता है। विश्व मांस व्यापार में भारत का हिस्सा मात्र 1% है और इसको बढ़ाने की अपार संभावनाएँ हैं। निर्यातित मांस का 95% हिस्सा भैंस के मांस का आता है, जबकि बकरी और भेड़ का मांस मात्र 5% निर्यात किया जाता है। अतः कुक्कुट, भेड़ एवं बकरी के मांस का निर्यात बेहतर प्रसंस्करण और विपणन द्वारा बढ़ाया जा सकता है। भारतीय पशुधन के मांस का निर्यात इसलिए भी आसान होगा क्योंकि इनका मांस कम वसा युक्त होता है, इसमें कोलस्ट्राल की मात्रा कम होती हैं, मांस उत्पादन की लागत कम है, मांस आयात करने वाले देशों की भौगोलिक दूरी कम है। परन्तु इसके लिए बदलते परिवेश में पादप मानको का ख्याल रखना पड़ेगा, अच्छे विनिर्माण अभ्यास को अपनाना होगा एवं सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन का ध्यान रखना अति आवश्यक होगा।

**तालिका 2: मांस और मांस उत्पादों का (2009 से 2012 के बीच) भारत द्वारा निर्यात**

| उत्पाद | वर्ष 2009-10 मात्रा (मीट्रिक टन) | 2009-10 कीमत (₹ लाख) | 2010-11 मात्रा (मीट्रिक टन) | 2010-11 कीमत (₹ लाख) | 2011-12 मात्रा (मीट्रिक टन) | 2011-12 कीमत (₹ लाख) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| भैंस का मांस | 495019.71 | 548066.00 | 726287.27 | 860779.00 | 985491.28 | 1372523.00 |
| बकरी एवं भेड़ का मांस | 52868.01 | 74720.00 | 12298.38 | 25879.44 | 11181.04 | 25522.00 |
| कुक्कड़ उत्पाद | 101678.31 | 37211.90 | 516753.80 | 31427.20 | 624165.70 | 45781.40 |
| सूअर का मांस | 1117.96 | 1034.89 | 1009.91 | 939.56 | 305.97 | 351.41 |
| पशु आवरण | 2020.56 | 3152.70 | 1804.70 | 3323.60 | 923.56 | 2705.00 |
| प्रसंस्कृत मांस | 716.18 | 958.52 | 1305.90 | 1949.78 | 1703.10 | 3000.50 |

स्रोतः एपेडा–2009–12

## मांस की संरचना एवं पोषक मूल्य

मांस की संरचना मूलतः 75% पानी, 19% प्रोटीन, 3.5% घुलनशील गैर प्रोटीन पदार्थ तथा 2.5% वसा से होती है जोकि विभिन्न कारणों से परिवर्तित भी होती है। मांस मुख्यतः पोस्टमार्टम से प्राप्त जटिल जैविक ऊतक अर्थात मांस पेशी है। मांस की संरचना में लीन ऊतक अर्थात् मांसपेशी फाइबर कोशिकाएँ वसा व संयोजी ऊतक शामिल हैं। वसा और वसा ऊतक मांस के विभिन्न भागों में संग्रहित होते हैं। वसा या तो अन्तर मांसीय अथवा चमड़े के नीचे की वसा के रूप में पाई जाती है। अतः मांस के तीन प्रमुख भाग – वसा, लीन अथवा मायोफाइब्रिलर भाग और संयोजी ऊतक मांस की गुणवत्ता निर्धारित करते हैं। विभिन्न पशुधन से प्राप्त कच्चे एवं पके हुए मांस की तुलना इस प्रकार हैं–

### तालिका–3: पशुओं के मांस की संरचना का तुलनात्मक अध्ययन

| | कच्चा मांस (प्रति 100 ग्रा.) | | | | पका हुआ मांस (प्रति 100 ग्रा.) | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | ऊर्जा (कैलोरी) | कुल वसा (ग्राम) | संतृप्त वसा (ग्राम) | प्रोटीन (ग्राम) | ऊर्जा (कैलोरी) | कुल वसा (ग्राम) | संतृप्त वसा (ग्राम) | प्रोटीन (ग्राम) |
| गोमांस | 182 | 10.4 | 4.3 | 21.5 | 278 | 18.8 | 8.0 | 27.0 |
| सूअर का मांस | 248 | 18.3 | 6.4 | 20.8 | 352 | 28.2 | 10.2 | 24.7 |
| भेड़ का मांस | 190 | 11.3 | 4.8 | 21.2 | 270 | 18.8 | 8.6 | 25.6 |
| मुर्गी का मांस | 160 | 4.1 | 1.1 | 30.4 | 222 | 6.8 | 1.8 | 39.5 |

## मांस में पाए जाने वाले लिपिड्स (चर्बी)

पशु की चर्बी मुख्यतः न्यूट्रल फैट एवं फास्फोलिपिड से बनी होती है। न्यूट्रल वसा मुख्यतः ट्राइग्लिसेराइड की स्ट्रेट चेन कार्बोक्साइलिक एसिड 16–18 कार्बन चेन के ग्लिसरोल ईस्टर्स होते हैं। यह कोशिका एवं कोशिका झिल्ली की संरचनात्मक और क्रियात्मक प्रणाली में योगदान देते हैं। फास्फेलिपिड मांस खाद्य के अर्न्तमांसीय का प्रमुख भाग भी होते हैं और लीन मांसपेशी का 0.5 से 1% हिस्सा इन्हीं से बना होता है। यदि मांसपेशी का कुल लिपिड 5% से घटकर 1% हो जाता है तो फास्फोलिपिड की मात्रा कुल वसा की 10% मात्रा से बढ़कर 70% हो जाती है। फास्फोलिपिड का बहुअसंतृप्तन भी ट्राइएसाइल ग्लिसराल के मुकाबले पंद्रह गुना अधिक होता है। कुल फास्फोलिपिड की मात्रा अलग–अलग प्रजाति में व एक ही जानवर में अलग अलग मांसपेशी में भिन्न–भिन्न होती है। कुक्कट एवं मछली की मांसपेशी में फास्फोलिपिड की मात्रा लाल मांस के मुकाबले कहीं अधिक होती है।

मांस में संतृप्त एवं असंतृप्त फैटी एसिड का मिश्रण पाया जाता है। मांस में पाए जाने वाले मुख्य फैटी एसिड–स्टीएरिक तथा पाकिटिक हैं। आमभाषा में संतृप्त वसा को "बुरा फैट" भी कहा जाता है। क्योंकि यह खून में पाए जाने वाले कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ाते हैं, जो एथिरोस्कलिरॉसिस का कारण भी है। परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि सभी संतृप्त फैट खून में कोलेस्ट्रॉल को नहीं बढ़ाते है, जैसे कि स्टीएरिक एसिड। मांस का प्रमुख फैटी एसिड स्टीएरिक एसिड ही है। गाय के मांस में कुल संतृप्त फैट का यह एक तिहाई हिस्सा होता है। इसी प्रकार मांस में मुख्य रूप से पाया जाने वाला दूसरा फैटी एसिड, पामिटिक एसिड भी खून में चर्बी को हमेशा नहीं बढ़ाता है। दूसरी ओर माइरिस्टिक एसिड की खून में कोलेस्ट्रॉल बढ़ाने की क्षमता पामिटिक एसिड से चार गुना होती है और यह मांस में मामूली रूप से ही पाया जाता है।

मांस में असंतृप्त फैटी एसिड जैसे कि पॉली अनसेचुरेटेड फैटी ऐसिड (पूफा) और मोनोअनसेचुरेट्ट फैटी एसिड (मूफा) का मिश्रण पाया जाता है। मूफा जैसे कि ओलिक एसिड माँस में अधिक में होते हैं (लगभग कुला वसा का 40%) पूफा शरीर में इकोसेनोएड

संश्लेषण में भाग लेते हैं और मेग्वरेन फोस्फोलिपिड के रूप में इनकी संरचनात्मक भूमिका होती है। पूफा दो प्रकार के होते हैं– ओमेगा-3 (n-3) और ओमेगा-5 (n-5)। यह फैटी एसिड शरीर में हृदय रोग को कम कर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

इससे अतिरिक्त इनमें सूजन विरोधी और ट्यूमर रोधी क्षमता भी होती है। मांस और मछली ही लम्बे n-3 पूफा का मानव भोजन में मुख्य स्रोत हैं। मांस का भोजन के रूप में एक और फायदा कंजूगेटिड लिनोलीक एसिड (सी. एल. ए.) का प्राप्त होना है। सी. एल. ए. का सबसे अच्छा स्रोत रूमिनेंट उत्पदा जैसे मांस ही है। मांस में पाई जाने वाली सी.ल.ए. की मात्रा को पशुओं की नस्ल, उम्र तथा उनको दी जाने वाली खाद्य सामग्री प्रभावित करती है। क्योंकि सी. एल. ए. मुख्यतः रूमेन में बनता है अतः रूमिनेंट मांस में इसकी मात्रा सूअर व मुर्गी के मांस की अपेक्षा अधिक होती है। यह सेहत के लिए फायदेमंद है क्योंकि यह ट्यूमर एवं एथिरोस्कलीरोसिस को कम करता है एवं शरीर में चर्बी को जमा होने से भी रोकता है, जिससे मधुमेह जैसी बीमारियाँ देर से शुरू होती हैं।

## मांस में पाया जाने वाला प्रोटीन

मांस प्रोटीन का बहुत ही अच्छा स्रोत है और इसमें सभी जरूरी अमीनो एसिड पाए जाते हैं। मांसपेशियों से प्राप्त प्रोटीन की जैव–उपलब्धता (एन पी यू = 0.75) पादप प्रोटीन (एन पी यू = 0.6) से अधिक होती हैं, अमीनो एसिड संतुलित मात्रा में होते है और पाचन–योग्यता भी अधिक होती है। पौधों से प्राप्त प्रोटीन में एक या एक से अधिक अमीनो एसिड कम मात्रा में होते हैं, जैसे कि गेहूँ में लाइसिन मक्का में ट्रिपटोफेन और सोयाबीन में सल्फर युक्त अमीनो एसिड।

दूसरी तरफ संयोजी ऊतक वाले मांस में अच्छा पौष्टिक प्रोटीन नहीं होता है क्योंकि कौलेजन और इलास्टिन में सल्फर–युक्त अमीनो एसिड कम मात्रा में पाए जाते हैं (0.8 ग्राम प्रति 100 ग्राम कुल प्रोटीन), जबकि अच्छे मांस में यह आंकड़ा, 2.6 ग्राम कौलेजन और 1.3 ग्राम इलास्टिन का है। अतः इस प्रकार का मांस खाने में भी स्वादिष्ट नहीं होता है और प्रायः ऐसे मांस को डिब्बाबंद कर बेचा जाता है। डिब्बाबंदी करने से पहले मांस को कीटाणुशोधन प्रक्रिया में उच्च तापमान से गुजरना पड़ता है, जिस दौरान कौलेजन की हाइड्रोलिसिस के कारण मांस नर्म पड़ जाता है। इस प्रक्रिया से गुजरने के बाद भी मांस की जैव–उपलब्धत्ता (एन पी यू) 0.5 के करीब ही रहती है, जबकि उच्च कोटि के मांस में (मांसपेशी युक्त) 0.75 –0.8 तक जैव–उपलब्धता होती है।

## मांस से प्राप्त विटामिन और खनिज लवण

मांस तथा इससे बनाए गए उत्पाद सभी बी–काम्पलेक्स जैसे थियामिन विटामिन, रिबोफ्लेविन, निआसिन, बायेटिन, बी–6, बी–12, पैंटोथिनिक एसिड एवं फोलेसिन युक्त होते हैं। आखिरी दो विटामिन खास तौर से यकृत में अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। मांस को पकाने की प्रक्रिया में विटामिन 'बी' की क्षति होती है, जो कि पकाने के तापमान और समय के साथ बढ़ती जाती है। इसके अतिरिक्त विटामिन ए., डी., ई. और के. भी मांस से प्राप्त होते हैं। सूअर का मांस और उससे प्राप्त 'बेकन' एवं 'हैम' तो थियामिन के सबसे अच्छे स्रोत हैं, क्योंकि सूअर के मांस में इसकी मात्रा गाय या भेड़ के मांस से पांच से दस गुना अधिक होती है।

विटामिन बी–12 सिर्फ पशुओं से उत्पन्न आहार से ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि यह विटामिन बैक्टीरियल किण्वन की प्रक्रिया में बनता है जो कि रूमिनेंट पशुओं की आंत में होने वाली क्रिया है। विटामिन बी–12 हमारे शरीर की लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण के लिए आवश्यक है तथा कई एंजाइम प्रक्रियाओं में को–फैक्टर का कार्य भी करता है।

मांस से आयरन, जिंक, सिलीनियम, कॉपर तथा मैगेनीज़ भी प्राप्त होता है। आज के परिपेक्ष्य में आयरन की कमी से होने वाला एनीमिआ विश्व का सबसे आम पोषण सम्बंधी विकार है। विश्व की 20–50 प्रतिशत आबादी इससे प्रभावित है। अतः मांस आयरन की जैव–उपलब्धता का प्रमुख साधन हो सकता है। मांस से प्राप्त आयरन की अवशोषण क्षमता भी ज्यादा होती है। यही कारण है कि शाकाहारी लोगों के भोजन में आयरन की मात्रा सर्वभक्षी लोगों की अपेक्षा बराबर या अधिक होने पर भी उनके शरीर में आयरन की मात्रा कम होती है। इसका एक कारण शाकाहारी भोजन में पाए जाने वाले, आयरन दमनकारी तत्वों के कारण भी होता है, जो कि शरीर में आयरन संशोषण अथवा उसके उपयोग को प्रभावित करते हैं।

मांस जिंक (Zn) का भी सम्पन्न स्रोत है, जिससे शरीर को वायरस, बैक्टीरिया तथा अन्य संक्रमणों से लड़ने की रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। जिंक प्रजनन तथा संज्ञानात्मक विकास में भी प्रमुख भूमिका निभाता है। सिलीनियम एक सूक्ष्ममात्रिक तत्व है और यह ऐन्जाइम ग्लूटाथयोन परओक्सीडेज़ का अभिन्न अंग भी है। इसका मुख्य कार्य एंटीऑक्सीडेंट का है तथा इसके कारण कुछ कैंसर जैसे प्रोस्टेट का कैंसर एवं ह्दय सम्बंधी बीमारियाँ कम होती हैं। गाय तथा सूअर के मांस में भेड़ के मांस की अपेक्षा अधिक सिलीनियम प्राप्त होता है। सौ ग्राम मांस से ही औसतन 10 माइक्रोग्राम सिलीनियम प्राप्त होता है जबकि मनुष्य की प्रतिदिन आवश्यकता 40 माइक्रोग्राम की ही है। फोस्फोरस का मुख्य कार्य जैव–रासायनिक प्रक्रियाओं में योगदान का है जैसे वसा एवं प्रोटीन चयापचय। इन सबके अतिरिक्त मांस से कॉपर, मैगनीशियम, पोटैशियम, आयोडीन तथा क्लोराइड भी प्राप्त होता है।

## निष्कर्ष

मांस मनुष्य के लिए पोषण से युक्त भोजन है क्योंकि इसमें प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, खनिज लवण और सभी बी–काम्पलेक्स विटामिन पाए जाते हैं। उत्कृष्ट पाचन–योग्यता के साथ–साथ सभी जरूरी अमीनो एसिड सही मात्रा एवं अनुपात में उपलब्ध होते हैं। आज के युग में संसाधित, पैक किए हुए, खाने के लिए तैयार मांस उत्पादों की पूरे विश्व में अत्याधिक मांग है। चूंकि भारत में विश्व में सबसे अधिक ऐसे पशु हैं जिनसे खाने के लिए मांस व मांस संसाधित उत्पाद प्राप्त हो सकते हैं, मांस, उत्पादन एवं संसाधन उद्योग पर ध्यान देना अति आवश्यक है। हालांकि इस दिशा में विकास हो रहा है परन्तु आज भी घरेलू खपत के लिए बाजार से मांस ताजा ही खरीदा जाता है। बहुत कम मात्रा में मांस को संसाधित कर उससे गुण–ग्राहक वर्धित उत्पाद जैसे कि पैटी, सॉसेज तथा नगेट्स इत्यादि बनाए जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से सफाई एवं स्वच्छता से बनाए गए मांस के उत्पादों की विश्व बाजार में अपार संभावनाएँ हैं। इसलिए मांस सदा ही आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण, ज्ञानेंद्रियों को सुखद अहसास देने वाला और पोषण से परिपूर्ण खाद्य–पदार्थ रहेगा।

☆☆☆☆☆

# भारत की मांस उत्पादन करने वाली भेड़ की नस्लें तथा मांसाहारी भोजन का महत्व

*संजीव सिंह एवं इन्द्रजीत गाँगुली*
*राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)*

भारत भेड़ जैव विविधता का एक समृद्ध स्रोत है। वर्तमान में, भारत में दुनियां की लगभग 4.5 प्रतिशत भेड़ें पाई जाती हैं (कुल 715.58 लाख, पशुधन जनगणना, 2007) भारत में 39 पंजीकृत भेड़ की नस्लें हैं। भेड़ मांस उत्पादन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, भारत में पाई जाने वाली मांस उत्पादन की भेड़ों की मुख्य नस्लें हैं। नेलोर, हसन, मचेरी, वेम्बुर, रामनाड व्हाइट, मद्रास रेड, तिरूची ब्लैक एवम केंगुरी।

इन भेड़ों की नस्लें मुख्यरूप से मांस उत्पादन के लिये, संपूर्ण दक्षिणी प्रायद्वीपीय क्षेत्र में पाई जाती हैं। इन से प्राप्त ऊन मोटी, रंगीन और 36एस से कम (>42 माइक्रोन औसत फाइबर व्यास) गुणवत्ता की होती है इसलिए यह केवल कम्बल, दरी, कालीन आदि बनाने के काम में ही आ सकती हैं।

**नेलोर:** यह नस्ल आँध्र प्रदेश के नेल्लोर, प्रकाशम् और आँगोल जिले में पाई जाती है। पशु अपेक्षाकृत लम्बा तथा कम बालों वाला (छाती,गर्दन के नीचे और पुट्ठों को छोड़कर) होता है। कान लम्बे और लटके हुए तथा पूँछ छोटी और पतली होती है।

**हसन**: यह कर्नाटक के हसन जिले में पाई जाती है। शरीर आकार में छोटा, रंग सफेद तथा काले या भूरे चकतेदार होता है, कान लम्बाई में मध्यम व खड़े हुए होते हैं तथा पैर और पेट पर उन नहीं होती है।

**मचेरी:** तमिलनाडू के सेलम और कोयम्बटूर जिले में पाई जाती है। आकार मध्यम, हल्का भूरा रंग, कान मध्यम, पूँछ छोटी तथा पतली तथा शरीर पर छोटे–छोटे बाल होते हैं।

**वेम्बूर:** तमिलनाडू के वेम्बूर, मेलाखारधंई, अचंगुलम में पाई जाती है। पशु लम्बा तथा सफेद रंग का होता है, जिस पर आसामान्य लाल और हल्के पीले रंग के चकते सम्पर्ण शरीर पर पाए जाते हैं। कान मध्यम आकार के और लटके हुए होते हैं। पूँछ पतली और छोटी तथा शरीर पर छोटे–छोटे बाल होते हैं।

**रामनद व्हाइट:** तमिलनाडू के रामनाड जिले में पाई जाती है। इस नस्ल की भेड़ मध्यम आकार की, मुख्यता सफेद रंग की होती है, कुछ के शरीर पर हल्के पीले रंग की और काली धारियां होती हैं। कान मध्यम तथा बाहर की ओर व नीचे की और निर्देशित होते हैं, पूँछ पतली और छोटी होती है।

**मद्रास रेड:** तमिलनाडू के चिन्गाल्पेट जिले में पाई जाती हैं, शरीर का रंग मुख्यतः भूरा होता है। रंग की तीव्रता हल्के भूरे से गहरे भूरे तक हो सकती है। कुछ पशुओं में माथे, जांघ के अन्दर की और निचले पेट पर सफेद रंग की धारियां होती हैं। कान मध्यम लम्बे और लटके हुए होते हैं। मेढ़े में मजबूत, लहरदार और घुमावदार सींग होते हैं तथा मेढ़ी बिना सींग के होती है, शरीर पर छोटे–छोटे बाल होते हैं।

**तिरूची ब्लैक:** यह तमिलनाडू के तिरूची, अर्काट, सालेम और धर्म पुरी जिले में पाई जाती है। यह छोटे आकार की नस्ल है। शरीर का रंग पूर्णतः काला होता है। कान छोटे तथा नीचे की ओर निर्देशित होते हैं। पूँछ पतली और छोटी होती है।

**केंगुरी:** यह कर्नाटक के रायचूर और कोप्पल जिले में पाई जाती है। यह मध्यम आकार के होते हैं शरीर का रंग अधिकतर गहरा भूरा या नारियल के आकार का होता है किन्तु यह सफेद से काले (विभिन्न रंगों के धब्बों सहित) भी हो सकते हैं। कान मध्यम, लम्बे और लटके हुए होते हैं, पूँछ पतली और छोटी होती है।

पशु उत्पादों की सूची में मांस एक प्रमुख घटक है, मांस और मांस उत्पादों में विभिन्न पोषक तत्व जैसे वसा, प्रोटीन, विटामिन बी–12, लोहा, जस्ता आदि प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। मांस को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता हैः लाल मांस तथा सफेद मांस।

लाल मांस में अधिक मायोग्लोबिन होने के कारण लाल रंग की तीव्रता अधिक होती है। यह लोहे का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। ओफ्फल मांस जैसे जिगर, गुर्दे तथा आंतरिक अंगों के मांस मे अधिक पोषक तत्व पाए जाते हैं। मांस में वसा की मात्रा इस के विभिन्न स्रोतों के भेदक तत्व के रूप में देखी जा सकती है, क्योंकि अधिक वसा के सेवन से हृदय रोग की संभावना रहती है। यद्यपि विभिन्न कारण ों से लोग अपने आहार में मांस और मांस उत्पादों की मात्रा को समाप्त कर रहे हैं, जैसे कि स्वास्थ्य सम्बन्धी चिंताए (हृदय रोग, कैंसर, उच्च रक्तचाप आदि), सांस्कृतिक व धार्मिक पृष्ठभूमि, कम आय आदि, तथापि मांस के विवेकपूर्ण प्रयोग से हम महत्वपूर्ण पोषक तत्वों को प्रचुर मात्रा में प्राप्त कर सकते हैं।

## मांस में पाए जाने वाले महत्वपूर्ण पोषक तत्व

**प्रोटीन :** प्रोटीन हर कोशिका के भीतर एक बुनियादी संरचनात्मक व कार्यात्मक तत्व होता है। यह 20 अमीनो एसिड से बना होता है। इन में से 8 अमीनों एसिड (आवश्यक अमीनो एसिड) का उत्पादन शरीर में नहीं होता, इन की आपूर्ति भोजन के द्वारा होती है पशु उत्पादों में फलों, सब्जियों और रोटी की अपेक्षा अधिक प्रोटीन पाया जाता है। मांस आवश्यक अमीनो एसिड विशेष रूप से सल्फर अमीनों एसिड में समृद्ध होता है। लाल मांस तथा सफेद मांस में प्रोटीन की मात्रा लगभग बराबर होती है। मांस, मछली और मुर्गी से प्राप्त प्रोटीन, सेम तथा सम्पूर्ण गेहूँ से प्राप्त प्रोटीन की तुलना में अधिक आसानी से पच जाता है।

**वसा :** मांस की वसा की मात्रा पशु की नस्ल, आयु, व्यायाम के स्तर और आहार पर निर्भर करती है। लीन मांस (कम वसा युक्त) में 2–5 ग्राम वसा प्रति 100 ग्राम पाया जाता है। इसमें संतृप्त और एक असंतृप्त वसा की मात्रा लगभग बराबर होती है तथा थोड़ी मात्रा में बहुअसंतृप्त वसा भी पाई जाती है। चरागाहों में चरने वाले पशु के मांस में, स्टाल फेड (दाना और भूसा खाने वाले) पशु के मांस की अपेक्षा कम वसा पाई जाती हैं। स्किनलेस चिकिन में अन्य मांस के मुकाबले एकलअसंतृप्त तथा बहुअसंतृप्त वसा अधि ाक होती हैं, जो कि रक्त में कोलेस्ट्रोल के स्तर को कम करने में सहायक होते हैं। रक्त में अधिक कोलेस्ट्रोल से हृदय रोग की सम्भावना रहती है। मछली में ओमेगा –3 बहुअसंतृप्त वसा अधिक पाई जाती है।

वसा मात्रा के अनुसार मांस इस प्रकार श्रेणीबद्ध है:

- **लाल मांस :** गौमांस (3.5–9.3%), भेड़ मांस (7.5–13.3%)
- **सफेद मांस :** पोर्क (3.7–10.1%), चिकन (1.1–9.7%), टर्की (2–6.6%)
- **पसंसकरित मांस :** बर्गर और सौसेज में सबसे अधिक वसा सामग्री पाई जाती है (25 % तक)

**लोहा :** लोहे की कमी मनुष्यों में एक आम समस्या है, इस की कमी के कारण रोगप्रतिरोधक क्षमता में कमी, एनीमिया, कम कार्य क्षमता, नवजात शिशुओं के वजन में कमी, खराब मानसिक स्थिति (मूड) आदि की समस्या होती है। खासकर, गर्भवती व प्रसव योग्य महिलाओं में इसकी अधिक आवश्यकता होती है। शाकाहारियों में इस की कमी की अधिक संभावना रहती है, क्योंकि मानव शरीर में गैर हीम लोहे (पादप स्रोत) की अवशोषण क्षमता (15%) हीम लोहे (मांस स्रोत) की अवशोषण क्षमता (25%) से कम है। यह पाया गया है कि एक मिश्रित भोजन में गैर हीम लोहे की अवशोषण क्षमता में दोगुनी वृद्धि होती है। लाल मांस जैसे गौ व भेड़ का मांस, लोहे का सबसे अच्छा, सूअर व चिकन का मांस मध्यम तथा मछली का मांस  सबसे कम स्रोत वाला होता है।

**जस्ता :** जस्ता मानव शरीर के लिए एक आवश्यक खनिज है। यह एंजाइम गतिविधि को बढ़ने, स्वास्थ्य प्रतिरक्षा प्रणाली प्रदान करने, घाव भरने, डी.एन.ए.की संरचना करने तथा स्वाद व गंध को महसूस करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मांस जस्ते का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह जिगर और गुर्दे में मांस की तुलना में अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह पाया गया है कि सूअर के जिगर में गौ व भेड़ के जिगर की अपेक्षा अधिक जस्ता पाया जाता हैं। पशु स्रोत से प्राप्त जस्ता पादप स्रोत से प्राप्त जस्ते की अपेक्षा बेहतर अवशोषित होता है।

## विटामिन बी

**विटामिन बी1:** यह पोर्क, बतख, सीप व अन्य मांस में सामान्य तौर पर पाया जाता है, इस की कमी के कारण बेरी–बेरी नामक रोग होता है। इनमें मस्तिष्क व हृदय सम्बन्धी लक्षण पाए जाते हैं। यह सामान्यतः अधिक मदिरापान करने वाले लोगों में पाए जाते हैं।

**विटामि बी2 :** ऑफल मांस (आंतरिक अंगों जैसे गुर्दा, जिगर), विटामिन बी2 का सबसे अच्छा स्रोत है। यह कार्बोहायड्रेट, वसा और प्रोटीन के चयापचय में सहायक होता है। यह प्रजनन, जोड़ों, त्वचा, बल और नाखून के विकास और मरम्मत तथा प्रतिरक्षा प्रणाली के रोगों से लड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

**विटामिन बी3 :** यह शरीर से विषैले और हानिकारक रसायनों को दूर करने में मदद करता है। इसके अलावा यह प्रजनन और तनाव सम्बन्धी हारमोंस का उत्पादन करने में तथा परिसंरचन में सुधार और रक्त में कोलेस्ट्रोल के स्तर को कम करने में भी मददगार है।

**विटामिन बी12 (कोबालामिन):** मांस और मछली इस विटामिल में समृद्ध होते हैं। यह कोशिका विभाजन और रक्त के गठन के लिए आवश्यक है। यह सूक्ष्म जीवों द्वारा संश्लेषित होता है तथा जीवाणु किण्वित खाद्य पदार्थ, मांस और रुमिनंट्स (जुगाली करने वाले जानवर) में पाया जाता है। यह जिगर में संग्रहित किया जाता है।

## मांस का स्वास्थ्य और पोषण सम्बन्धी महत्व

पर्थ (ऑस्ट्रेलिया) में किये गए एक अध्ययन के अनुसार लाल मांस की प्रति व्यक्ति खपत में तेजी से गिरावट हुई है, जबकि सफेद मांस की खपत बढ़ी है। इसका मुख्य कारण लाल मांस में ज्यादा वसा पाया जाना है, जो कि कोलेस्ट्रोल को बढ़ाने का काम करता है। इसीलिए लीन मांस (कम वसायुक्त) तेजी से एक पसंदीदा विकल्प बनता जा रहा है, किन्तु यह अक्सर अधिक महँगा होता है। मांस निश्चित तौर पर एक महत्वपूर्ण तत्व है लेकिन इस का अधिक मात्रा में सेवन करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। संरक्षित व प्रसंस्कृत मांस टाइप 2 डायबिटीज के जोखिम को बढ़ाता है, हालाँकि पोषण विशेषज्ञों का मत है कि बहुत ज्यादा मांस खाना मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। लेकिन पोषण के नजरिए से इसे बिल्कुल छोड़ देना भी शरीर के लिए फायदेमंद नहीं है। इसलिए हमें एक संतुलित आहार लेना चाहिए, जिसमें मांस की मात्रा संतुलित हो तथा मांस कम संपूर्ण वसा व अधिक एकल असंतृप्त तथा बहुअसंतृप्त वसा युक्त हो।

☆☆☆☆☆

# सम्पूर्ण आहार वट्टिका खिलाने के लाभ

*ओम हरि चतुर्वेदी, आर्तबन्धु साहू, सुरेन्द्र कुमार संख्यान, रणधीर सिंह भट्ट एवं मनोज कुमार त्रिपाठी*
*पशु पोषण विभाग, केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर (राजस्थान)*

पशुओं की खिलाई में प्रयुक्त सूखे चारों जैसे कड़बी, भूसा, चारा घास आदि के समुचित उपयोग हेतु विभिन्न प्रकार की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक उपचार विधियाँ अपनाई जाती हैं। भौतिक उपचार के अन्तर्गत कुट्टी काटना, पीसना, गोलियाँ (पैलेटिंग) बनाना व अधिक दबाव द्वारा आहार की वट्टिका बनाना शामिल है। पीसने व गोलियाँ बनाने से सूखे चारों का आयतन घटने के साथ–साथ इनकी पाचकता में भी वृद्धि होती है। सूखे चारों पर आधारित सम्पूर्ण आहार के ब्लाक (वट्टिका) बनाते समय भूसे के साथ रातिब मिश्रण व अन्य आवश्यक पोषक तत्व भी मिला दिए जाते हैं, जिससे संपूर्ण आहार की वट्टिका (ईंट) में भूसा व दाने की एकरसता के साथ घनत्व व पाचकता में भी वृद्धि होती है। जब आमाशय में चारा व रातिब मिश्रण एक निश्चित अनुपात में पहुँचता है तो उसमें उपस्थित जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है एवं रोमन्थ में उपापचयी उत्पादों के उपयोग में वृद्धि होती है।

सम्पूर्ण आहार वट्टिका पशुओं की दैनिक पोषक तत्वों की आवश्यकताओं के अनुसार बनाई जाती है। इनके निर्माण में 50–70 प्रतिशत सूखे चारे एवं 30 से 50 प्रतिशत दाने का प्रयोग किया जाता है। वट्टिका बनाने की प्रक्रिया में सूखे चारे के साथ दाना समरस हो जाता है, जिससे उसकी गुणवत्ता में सुधार होता हैं। सम्पूर्ण आहार वट्टिका का घनत्व 150 कि. ग्रा. प्रति घन मीटर तक होता है जबकि वट्टिका बनाने से पूर्व उसी आहार के मिश्रण का घनत्व 50 कि. ग्रा. प्रति घन मीटर ही होता है। इस प्रकार की वट्टिकाओं का यातायात व भंडारण सुरक्षित, आसान एवं कम खर्चीला होता है। साधारणतः एक ट्रक अपने स्वीकृत आकार से अधिक भरने के बाद भी मात्र 25 से 30 क्विंटल भूसा ही ले जा सकता है एवं दुर्घटना की आशंका भी रहती है जबकि एक ट्रक में तैयार वट्टिकाएँ 100–120 क्विंटल तक आसानी से ले जाई जा सकती है।

## वट्टिका बनाने की विधि

सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाने में चारे व रातिब मिश्रण का अनुपात पशुओं की शारीरिक अवस्थानुसार निर्धारित किया जाता है। सामान्यतः निर्वाह आहार के लिए बनाई गई संपूर्ण आहार वट्टिकाओं में चारा व रातिब मिश्रण का अनुपात लगभग 80:20 व उत्पादन के लिए यह अनुपात 60:40 से 70:30 तक हो सकता है। चारों के लिए फसलों के उपोत्पाद जैसे गेहूँ का भूसा, कड़बी, मूँगफली का चारा, मोंठ चारा, ग्वार भूसा, सरसों का भूसा, सूखी पत्तियाँ, विभिन्न प्रकार की घासों व चारों को ऊर्जा एवं रेशा के लिए तथा रातिब मिश्रण (दाना) को प्रोटीन एवं ऊर्जा के मुख्य स्रोत के रूप में प्रयोग करते हैं। पशुओं के लिए दाना बनाने के लिए प्रायः पाँच प्रकार के घटकों जैसे अनाज, खलियाँ, चोकर–चूरियों में खनिज मिश्रण और नमक की मात्रा प्रायः निश्चित रहती है। मोटे तौर पर

*चारे की अव्यवस्थित खिलाई*

*सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाना*

अन्य तीन घटकों जैसे अनाज, खलियाँ व चोकर–चूरी आदि, प्रत्येक को एक तिहाई मात्रा में प्रयोग किया जाता है। पशुओं के दाने में प्रायः प्रोटीन की मात्रा 17–18 प्रतिशत और कुल पाचक तत्वों की मात्रा 70–75 प्रतिशत तक रखी है। दोनों प्रकार के स्रोतों (चारों व रातिब मिश्रण) को विभिन्न अनुपात में मिलाकर भिन्न–भिन्न संघटनों की वट्टिकाएँ बनाई जा सकती हैं, जो पशु की शारीरिक अवस्था के अनुसार पोषक तत्वों की आपूर्ति में सक्षम होती हैं। सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाने में 5 से 7 प्रतिशत शीरे का प्रयोग भी किया जाता है।

वट्टिका बनाने से पहले चारे, दाने व शीरे की निश्चित मात्रा को क्षैतिज मिश्रण में भलीभाँति मिलाते हैं। जब लगभग 10 से 12 क्विंटल मिश्रण तैयार हो जाता है तब वट्टिका बनाना शुरू करते हैं। मशीन का स्वीच ऑन करने के बाद वट्टिका बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है। इसके लिए मशीन के हॉपर के ढक्कन को खोलकर, जितने भार की वट्टिका बनानी हो उतना मिश्रण डालकर ढक्कन को बन्द कर देते हैं। तदोपरांत् नियंत्रण पटल से मशीन से स्वचालित चक्र वाले बटन को दबाने पर मिश्रण को दबाकर वट्टिका बनने एवं तैयार वट्टिका को निकासनाल (परनाला) में सरकाने तक की क्रिया सहज ही पूर्ण हो जाती है। इसके पश्चात् चक्र के लिए मशीन पुनः तैयार हो जाती है। तैयार की हुई लगभग 10 वट्टिकाएँ मशीन के निकासनाल में तब तक रहती हैं जब तक कि उसमें और वट्टिकाएँ नहीं आ जाती हैं। वट्टिका बनाने की प्रक्रिया अस्वचालित प्रकार से भी की जा सकती है।

सम्पूर्ण आहार वट्टिका खिलाना

सम्पूर्ण आहारो की वट्टिकाओं का भंडारण जब शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में किया जाता है तब यह दो वर्षों के बाद भी ये पशु उपयोग के लिए उपयुक्त रहती हैं। पॉलीथीन के आवरण या वायु रहित पॉलीथीन के बोरों में इनका भंडारण करने से इनको और भी अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। भंडारण के दौरान भंडारगृह को पानी आदि से बचाना आवश्यक है।

सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं के उपयोग से पशुओं द्वारा आहार का अंतर्ग्रहण अधिक एवं रोमंथ में उसके पाचन व चयापचय की क्रियाएँ भलीभाँति सम्पन्न होती हैं, जिसके फलस्वरूप पशु को अच्छा पोषण प्राप्त होता है। वर्धनशील पशुओं को जब इन सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं को खिलाया जाता है तब उनके देहभार में सामान्य से 29 से 48 प्रतिशत अधिक वृद्धि होती है। इसी प्रकार दुधारू पशुओं को सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं को खिलाने से उनका दुग्ध उत्पादन 23 से 34 प्रतिशत बढ़ जाता है।

सम्पूर्ण आहारों की वट्टिकाओं में चारे के साथ पेड़ों की पत्तियों का समावेश करने से आहार में प्रोटीन का स्तर बढ़ जाता है। यह प्रभाव तब और अधिक होता है, जब पत्तियों का प्रयोग मुख्यतः सरसों या किसी अन्य बढ़िया चारे के साथ किया जाता है।

## लाभ

1. उच्च दबाव के कारण चारा व दाना आपस में अच्छी प्रकार से मिल जाते हैं। फलस्वरूप पशु एक निश्चित अनुमान में ही चारे व दाने को खाता है। जिससे पशु के रोमंथ में इसका किण्ड्वन समुचित होता है तथा उसे पोषक तत्वों की अधिक आपूर्ति होती है।

2. ऊर्जा व प्रोटीन के तारतम्य के कारण पशु आहार की स्वादिष्टता व पाचकता में बढ़ोत्तरी होती है।
3. पशुओं द्वारा चारे की न्यूनतम जूठन छोड़ी जाती है।
4. तैयार की गई वटि्टकाएँ भूसे की अपेक्षा तिहाई स्थान ही घेरती है, जिससे इनके भंडारण में आसानी होती है तथा इनके परिवहन में भी सुविधा रहती है।
5. यदि आवश्यक हो तो वटि्टका बनाने के दौरान रोगों से बचाव की दवाएँ भी मिलायी जा सकती हैं।
6. सम्पूर्ण आहार की वटि्टकाओं का भंडारण बिना किसी दुष्प्रभाव के एक साल तक किया जा सकता है।
7. ग्रामीण क्षेत्रों में पशु पालन का ज्यादातर कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता है, इस तकनीक से उन पर कार्य का बोझ घट जाता है।
8. इस तकनीक से सूखे चारे की प्रचुर मात्रा वाले स्थानों में वटि्टकाएँ बनाकर अकालग्रस्त या अभावग्रस्त क्षेत्रों में आसानी से पहुँचायी जा सकती हैं।

## सावधानियाँ

1. चारे दाने के मिश्रण बनाने से यदि यूरिया उर्वरक का प्रयोग कर रहे हों तो यूरिया को पहले शीरे की निश्चित मात्रा में भलीभाँति घोल लेना चाहिए।
2. यदि पशु वटि्टका को प्रारंभ में न खाए तो वटि्टकाओं को तोड़कर खिलाना चाहिए।
3. क्षैतिज यॉंत्रिक मिक्सर व वटि्टका बनाने की मशीन पर पूर्ण सतर्कता से कार्य करना चाहिए।

☆☆☆☆☆

# कुक्कुट आहार में विषयुक्त कवकों का प्रभाव एवं रोकथाम

*राम सिंह, असीत बरन मण्डल एवं दिव्या*
*केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान इज्ज़तनगर, बरेली (उत्तर प्रदेश)*

प्राचीन काल से ही मनुष्य अपने खाद्य एवं पेय पदार्थों में खुशबू लाने के लिए कुछ कवकों का प्रयोग कर रहे हैं। यद्यपि इन कवकों के बारे में पहले कोई जानकारी नहीं थी, किन्तु कुछ समय से कवक विज्ञान की उन्नति के कारण अब कवकों के बारे में अत्यधिक जानकारी उपलब्ध है। कवकों की विभिन्न प्रकार की प्रजातियां पाई जाती हैं। कुछ कवक आमतौर पर खेतों में उगती हुई व संचित फसलों को सक्रंमित कर देते हैं। कवकों की ज्यादातर प्रजातियां जैविक पदार्थों पर उगती हैं तथा उनके विघटन में सहायता करती हैं। कुछ कवक पशुओं में बीमारी पैदा करते हैं, जबकि कुछ कवक मनुष्य के पौष्टिक आहार के रूप में तथा कुछ प्रतिजैविकी व अन्य महत्वपूर्ण रसायनों के स्रोतों के रूप में लाभदायक होते हैं। इसके विपरीत विषैले कवक खाने से बीमारी हो जाती है तथा मृत्यु भी हो सकती है। इस लेख में हम कवकों के बारे में चर्चा करेंगे जो पशुओं के लिए हानिकारक होते हैं।

## पशु आहार की गुणवत्ता पर कवक का प्रभाव

कुक्कुट आहार को सक्रंमित करने में एवं उसकी गुणवत्ता पर प्रभाव डालने में कवक प्रमुख हैं। कवक से दूषित आहार में पोषक तत्वों की मात्रा तथा इनकी चपापचय में बाधा उत्पन्न हो जाती है। फफूंद के कण पक्षियों के शरीर में आहार के साथ पहुँच कर रोग उत्पन्न करते हैं। यह देखा गया है कि कवक ग्रस्त आहार में दस प्रतिशत उपापचयी (मेटाबालाइजेबल) ऊर्जा तथा पाँच प्रतिशत प्रोटीन की कमी हो जाती है। खाद्य पदार्थों की संरचना में बदलाव उस पर उग रही कवक की किस्मों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए एसपरजिलस किस्म आमतौर पर अनाज के जर्म वाले भाग पर उगती है; क्योंकि वसा जर्म में सबसे ज्यादा मात्रा में पाई जाती है। इसलिए इस कवक के उगने से अनाज में ऊर्जा की कमी हो जाती है।

## कुक्कुट आहार में कवकों की रोकथाम

कवक की वृद्धि में सबसे महत्वपूर्ण योगदान नमी का होता है। आहार में नमी मुख्यत: तीन स्रोतों से आती है–खाद्य पदार्थों से, आहार बनाते समय तथा वातावरण जिसमें आहार रखा जाता है। इसलिए आहार में नमी की मात्रा को कम रखने के लिए इन तीन स्रोतों पर ध्यान देना चाहिए, जिससे आहार को नमी से बचाया जा सके। आहार में मक्का तथा दूसरे अनाज नमी तथा कवक के प्रारम्भिक स्रोत होते हैं। इसलिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन अनाजों में नमी की मात्रा को नियंत्रित किया जाए, जिनसे आहार बनाया जाता है। इसलिए यदि अनाज को 13 प्रतिशत नमी तक बचाएं क्योंकि टूटे दानों पर फफूंद लगने की क्षमता पाँच गुण बढ़ जाती है। कवक को आहार पर उगने में कुछ वक्त लगता है, इसलिए कवक उगने से पहले ही जब आहार ताजा होता है उसकी खपत कर लेनी चाहिए। आहार बनाते समय या बाद में, आहार पुराने आहार के सम्पर्क में आ जाता है। पुराना आहार आमतौर पर कवक ग्रस्त होता है, जिससे पूरे आहार में कवक वृद्धि की संभावना हो जाती है। इसलिए आहार चक्की को साफ–सुथरा रखना चाहिए।

कुछ रासायनिक पदार्थों के प्रयोग से भी भण्डारित खाद्य पदार्थों में कवक को रोका जा सकता है। कार्बनिक अम्ल जैसे प्रोशियोनिक, फोरमिक, एसिटिक, फ्यूमेरिक, बुटाइरिक, बेन्जोयिक अम्ल आमतौर पर प्रयोग में लाए जाते हैं। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए कुक्कुट पालकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए ताकि कुक्कुट आहार को कवकों के संक्रमण से बचाया जा सके।

1. कुक्कुट आहार में प्रयोग आने वाले खाद्य पदार्थों को खरीदते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इनमें कोई बाहरी पदार्थ न हो और ये सूखे एवं कीट रहित हो।
2. खाद्य पदार्थों के संचय करने का स्थान साफ–सुथरा एवं नमी रहित होना चाहिए।
3. खाद्य पदार्थों को लम्बे समय तक संचयित नहीं करना चाहिए।

4. संचयित किए गए खाद्य पदार्थों की समय–समय पर नमी तथा कीटों के लिए जाँच करते रहना चाहिए।

5. संचयित किए गये खाद्य पदार्थों में नमी की मात्रा 12–13 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

6. आहार में उन अनाजों का प्रयोग न करें जो खराब हो तथा जिनकी जांच नहीं की गई है।

7. 13% नमी वाले आहार में यदि फ्यूमेरिक एसिड 0.20% या साइट्रीक एसिड 0.45% मिलाया जाए तो आहार को एक महीने तक सुरक्षित रख सकते हैं। कवक वृद्धि को रोकने के लिए एसिड की मात्रा आहार में नमी की मात्रा पर निर्भर करती है।

निम्नलिखित कवक आहार में कई तरह के विष पैदा करते हैं–

**तालिका 1: विषयुक्त कवक**

| विषयुक्त कवक | विष का नाम |
|---|---|
| एस्पराजिलस फलेवस, एसपराजिलस पैरासिहिकसु | अफ्लाटाक्सिन |
| एसपराजिलस ऑक्रेसियस, पैनिसिलियम वरिडिकेटम | ऑक्राटॉक्सिन |
| फ्यूजेरियम रोजियम, फ्यूजेरियम ऑक्सिसपोरम, फ्यूजेरियम मोनिलिफोरम | जिरोलिनोन |
| फ्यूजरियम ट्राइसिन्क्टम | ट्राइकोथिसिन टाक्सिन |
| फ्यूजेरियम निवेल | |
| फ्यूजेरिम रोजियम | |
| फ्यूजेरियम सपोरोट्राइकिआइड | |
| फ्यूजेरियम ग्रेमिनीएरम | |

उपरोक्त विष आहार के साथ पक्षी के शरीर में चले जाते हैं। जिससे कुक्कुट पालकों को कई तरह की आर्थिक हानियां होती हैं।

1. पक्षी का भार कम रह जाता है।

2. अण्डे की पैदावार कम हो जाती है।

3. आहार रूपान्तर क्षमता कम हो जाती है।

4. मृत्यु दर बढ़ जाती है।

5. अण्डे के छिलके की गुणवत्ता कम हो जाती है।

6. प्रजनन क्षमता घट जाती है।

7. रोग रोधक क्षमता कम हो जाती है।

कुक्कुट आहार में मैननऑलिगेसैक्राइड या सेक्रोमाइसिस सरबिसी 0.2% मिला कर खिलाने से अफलाटॉक्सिन का प्रभाव कम हो जाता है। इस तरह से फ्यूमेरिक एसिड या साइट्रीक एसिड कुक्कुट आहार में मिलाने से किसान अपने आहार को एक महीने तक सुरक्षित रख सकते हैं। यदि पहले से ही अफलाटॉक्सिन आहार में उपस्थित है तो किसान मैननऑलिगोसैक्राइड या सेक्रोमाइसिस सरविसी आहार में मिला कर अफलाटॉक्सिन के प्रभाव से पक्षियों को बचा सकते हैं तथा पक्षियों मे भार वृद्धि को बढ़ा सकते हैं।

☆☆☆☆☆

# भारत में चारे की आवश्यकता एवं उपलब्धता

*चन्द्र नाथ मिश्र, राज पाल मीना, सतीश कुमार एवं विकास गुप्ता*
*गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल (हरियाणा)*

पशुधन की दृष्टि से भारत विश्व में सम्पन्न राष्ट्र है तथा यह विकासशील देशों में आजीविका सुरक्षा प्रदान करने के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत है। मानव पोषण प्रदान करने के अलावा पशुधन फसल पोषण, कृषि क्रियाओं के लिए ऊर्जा का स्रोत, ग्रामीण परिवहन के साथ–साथ एक बहुमूल्य परिसम्पत्ति होते हैं। पशुधन का प्रभाव कृषि उत्पादन पर सीधे रूप में पड़ता है। शुष्क तथा आर्द्र शुष्क क्षेत्रों में पशुधन आजीविका का एक मात्र स्रोत रह जाते हैं, मुख्य रूप से जब कृषि पर सूखे की मार पड़ती है।

विश्व के 17 प्रतिशत पशु भारत में पाए जाते हैं, जो विभिन्न उत्पादों में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं। राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में पशुधन का 9 प्रतिशत तथा कृषि सकल घरेलू उत्पाद में एक चौथाई योगदान रहता है। पशुधन की 4 महत्त्वपूर्ण जातियों में से 43 प्रतिशत गाय, 19 प्रतिशत भैंसे, 26 प्रतिशत बकरियां तथा 10 प्रतिशत भेड़ें हैं। गाय एवं भैंसे जो दुग्ध उत्पादन का प्रमुख स्रोत हैं, उनके निर्वहन के लिए अधिक मात्रा में चारे एवं अन्य प्रकार के पशु आहार की आवश्यकता होती है। भेड़–बकरियों का भरण–पोषण अधिकतर खुले चारागाहों में चराकर किया जाता है।

हमारे देश में अधिक पशुधन होने के बावजूद उनका उत्पादन कम है, जिसका एक मुख्य कारण हरे चारे का अभाव भी है। देश में चारे एवं दाने की उपलब्धता पशुओं की संख्या के अनुपात में काफी कम है। जिसके कारण बहुत से पशुओं को उनकी आवश्यकता के अनुरुप चारा नहीं मिल पाता तथा उनमें पोषण की कमी हो जाती है, जिससे उनकी उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है। दुग्ध उत्पादन मुख्यतः पशुओं को खिलाए जाने वाले चारे पर निर्भर करता है। उच्च गुणवत्ता वाले चारे जैसे की फलीदार चारे द्वारा कन्सन्ट्रेट खाद्य पदार्थ जैसे कि खलियां, बिनौला इत्यादि की मात्रा को कम किया जा सकता है।

**तालिका 1: भारत में चारे की आवश्यकता एवं उपलब्धता (वर्ष 2005–2006)**

| चारा | आवश्यकता (मी.ट.) | उपलब्धता (मी.ट.) | कमी (प्रतिशत में) |
|---|---|---|---|
| हरा चारा | 1025 | 390 | 62 |
| सूखा चारा | 570 | 443 | 22 |

भारत में पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता एवं इसकी आपूर्ति की स्थिति दयनीय है। वर्ष 2005–06 के दौरान हरे चारे की आवश्यकता 1025 मी. टन थी तथा उपलब्धता 390 मी. टन थी। इसी दौरान सूखे चारे की आवश्यकता 570 मी. टन तथा उपलब्धता 443 मीट्रिक टन थी। अतः हरे चारे की उपलब्धता में 62 प्रतिशत तथा सूखे चारे की उपलब्धता में 22 प्रतिशत की कमी पाई गई। इस कमी के कारण से हमारे दुधारू पशु अल्पपोषित रह जाते है तथा दुग्ध उत्पादन पर सीधे रूप में असर पड़ता है। चारे की उपलब्धता एवं इसकी आपूर्ति में कमी का एक प्रमुख कारण किसानों द्वारा चारा उत्पादन को अपेक्षाकृत कम महत्व देना है।

भारत में कुल चारे की आवश्यकता का 54 प्रतिशत फसल अवशेष से तथा 18 प्रतिशत चारागाह से पूर्ण होती है जबकि मात्र 28 प्रतिशत चारा विशेष रूप से पशुओं के लिए उगाया जाता है, जोकि नगण्य है।

फसल अवशेषों में, जोकि भारत में चारे का महत्वपूर्ण स्रोत है, धान एवं गेहूँ का भूसा प्रमुख है। चारे की इतनी कमी होने के बावजूद उत्तर भारत में कुछ राज्यों में फसल अवशेष को जलाना साधारण प्रक्रिया बन गई है, जो कि एक चिन्ता का विषय है तथा इस प्रक्रिया को रोकने का प्रयास करने की आवश्यकता है। यह दृश्य कुछ क्षेत्रों में चारे की अधिक उपलब्धता दर्शाता है, जबकि कुछ क्षेत्रों में लगभग उसी समय पशुधन के लिए चारा उपलब्ध नहीं रहता है। भारत वर्ष में 90 प्रतिशत पशुधन सीमान्त एवं लघु कृषकों के पास है जो अपनी कम जोत के कारण चारे वाली फसल की अपेक्षा अनाज वाली फसलों को अधिक महत्व देते हैं। चारा फसल

के लिए बाजार में गुणवत्ता बीज की कमी का होना भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। इन्ही कारणों की वजह से पिछले 2 से 3 दशकों में चारे वाली फसलों के अर्न्तगत क्षेत्र स्थिर रहा है।

यद्यपि चारे की 54 प्रतिशत आवश्यकता फसल अवशेषों से पूरी होती है, फिर भी इसकी उपज एवं गुणवत्ता बढ़ाने के लिए गम्भीर प्रयासों की कमी है। हरित क्रान्ति के दौरान प्रयुक्त की गई प्रजातियों की पौध–ऊंचाई तथा जैव–भार कम होने की वजह से भूसे की उपलब्धता  पर नकरात्मक असर पड़ा है। जिसके फलस्वरूप हरित क्रान्ति के उपरान्त भूसा उत्पादकता में आनुपातिक रुप में कमी आई हैं। इस कमी को अब भविष्य में उपयुक्त पादप प्रजनन क्रियाओं द्वारा दूर करने की आवश्यकता है।

फसल अवशेषों की समय से कटाई, प्रसंस्करण तथा भण्डारण भी चारे की उपलब्धता एवं गुणवत्ता को बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। उच्च गुणवत्ता का भूसा प्राप्त करने के लिये फसल की कटाई उपयुक्त समय से करना एक आवश्यक कदम है। फसल में रेशे की मात्रा अत्यधिक होने से पहले कटाई कर लेनी चाहिए। जिससे उसकी पोषण गुणवत्ता बनी रहती है तथा पशुओं द्वारा मीथेन गैस उत्सर्जन की दर में कमी आती है। पशुओं द्वारा मीथेन गैस उत्सर्जन जलवायु परिवर्तन के लिये जिम्मेदार घटक माना जा रहा है।

भारत में कृषि के अलावा काफी क्षेत्रफल अनुपजाऊ बंजर भूमि के अधीन है, जहां पर गैर–पारंपरिक चारे वाली फसलें एवं वृक्ष जैसे कि धामन घास, स्टाइलों, खेजरी, अरडु, बेर, सुबबूल इत्यादि के उत्पादन के लिये उपयोग में लाना चाहिए। उपयुक्त प्रयासों से चारे की उपलब्धता बढ़ने के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण जैसे कि मृदा क्षरण को रोकना, मृदा की दशा में सुधार होना तथा भूजल पुनः भरण जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति भी हो सकेगी।

जो किसान व्यवसायिक स्तर पर चारा उत्पादन करते हैं, उन्हें उपयुक्त कृषि जलवायु के अनुरूप प्रजातियों का चयन एवं प्रमाणित बीजों का उपयोग इत्यादि करना चाहिए, जिससे कि अधिक एवं लाभदायक उपज प्राप्त हो सके। अतिरिक्त उत्पादित चारे को हे तथा साइलेज बनाने की उपयुक्त विधि का प्रयोग करके संरक्षण करना चाहिये।

☆☆☆☆☆

# कृषि वानिकी: चारा उत्पादन के लिए आर्थिक रूप से सक्षम तकनीक

*राजपाल मीना, चन्द्र नाथ मिश्र, सतीश कुमार एवं विकास गुप्ता*
*गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल (हरियाणा)*

कृषि वानिकी एक सयुंक्त नाम है, जिसमें सदाबहार वृक्ष एवं झाड़ियों को वैज्ञानिक विधि से कृषि फसलों के साथ उगाया जाता है। कृषि वानिकी की उपयोगिता एवं महत्त्व को विश्वभर में स्वीकार किया जा चुका है। कृषि वानिकी आर्थिक लाभ के साथ–साथ सामुदायिक एवं परिस्थितिक तन्त्र के लिए भी महत्वपूर्ण है। विभिन्न प्रकार की कृषि वानिकी तकनीकों को विकसित किया गया है, जो मानव एवं पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान सुझाती हैं। लेकिन इसका महत्त्वपूर्ण योगदान पशुधन के लिए चारा उपलब्ध कराना एवं इमारती लकड़ी है, विशेष रूप से उस समय जब खेतों में हरे चारे की उपलब्धता नगण्य रहती है।

खाद्य एवं कृषि संगठन (2005) के अनुसार विश्व के अनेक भागों में कृषक कृषि वानिकी को अपनाकर पशुपालन से अपनी आय को बढ़ाया है, साथ ही साथ फसल उत्पादन में इज़ाफा हुआ है। जबकि कृषि वानिकी के सहयोग से पशुओं को चराने के लिए मानव श्रम में कमी देखी गई है। पशुधन के चारे के साथ साथ इमारती लकड़ी, जलावन एवं पर्यावरणीय सेवाएँ जैसे कि कार्बन अधिग्रहण, तेज हवाओं के झोकों को रोककर फसल नुकसान को कम करना, मृदा क्षरण को रोक कर मृदा उर्वरता में वृद्धि करना, जंगलों पर जैविक दबाव कम करना, जैव विविधता में वृद्धि जैसे अनेक लाभ कृषि वानिकी से सुनिश्चित होते हैं।

कृषि वानिकी का अंगीकरण उन्नत कृषि एवं पशुधन उत्पादन की राह को सरल एवं सुगम बनाता है, क्योंकि कृषि वानिकी की कार्य प्रणाली कम खर्चीली है। इस कारण बड़े किसानों के साथ–साथ लघु एवं सीमान्त कृषक भी इसको वहन कर सकते हैं। विश्वभर में चारागाह क्षेत्र में तेजी से गिरावट आई है। जैसे–जैसे जनसंख्या का दबाव बढ़ता जाएगा इसमें और कमी होने की पूरी सम्भावना है। लघु एवं सीमान्त कृषकों एवं शुष्क तथा अर्ध शुष्क क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था मुख्यतः पशुधन पर ही निर्भर करती है, क्योंकि अनियमित एवं कमजोर मानसून के चलते फसलों के असफल होने का जोखिम हमेशा रहता है। अतः पेड़, झाड़ियों द्वारा उत्पादित चारा एक तार्किक उत्तर है, जो कृषि प्रणाली को मजबूत करता है, पशुओं को पोषण युक्त चारा प्रदान करता है तथा कृषक की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाता है।

इन परिस्थितियों के अर्न्तगत बहुउपयोगी वृक्ष एवं झाड़ियां, जिन्हें अन्य फसलों के साथ उगा सकते हैं, महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बहुपयोगी वृक्ष एवं झाड़ियां जैसे के अरडु, सुबबूल, अनजन पेड़, खेजरी, बेर, बबूल, नीम, सहजन इत्यादि पशुधन के लिये चारा, जलावन लकड़ी, इमारती लकड़ी, पशुओं के लिए छाया इत्यादि उपलब्ध करवाते है। इनके अतिरिक्त बहुमूल्य पशुओं की गोबर को जलाने से बचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिसे खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। कृषि वानिकी में चारा हेतु उगाए जाने वाले वृक्ष एवं झाड़ियों में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व उचित मात्रा में पाये जाते हैं, जिसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

**तालिका 1: चारा प्रदान करने वाले वृक्ष की पत्तियों का पोषण मान**

| वृक्ष | क्रूड प्रोटीन (प्रतिशत) | क्रूड रेशा (प्रतिशत) | नत्रजन मुक्त तत्त्व (प्रतिशत) | कैल्शियम (प्रतिशत) | फास्फोरस (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|---|---|
| अरंडु | 19.87 | 12.72 | 3.53 | 2.11 | 0.24 |
| गम सेनेगल वृक्ष | 10.30 | 9.70 | – | 6.90 | 0.50 |
| शिरिष | 16.80 | 31.50 | 4.00 | 2.57 | 0.15 |
| नीम | 14.50 | 23.08 | 2.31 | 2.39 | 0.14 |
| कठमूली | 15.36 | 18.50 | 3.33 | 4.13 | 0.14 |
| खेजरी | 13.98 | 17.80 | 1.88 | 2.73 | 0.15 |
| बेर | 14.25 | 15.73 | 4.34 | 2.43 | 0.14 |
| सुबबूल | 21.45 | 14.25 | 6.54 | 2.70 | 0.17 |

अरडु में टेनिन तत्त्व अपेक्षाकृत कम मात्रा में होता है, जिसके कारण पाचन योग्य क्रूड प्रोटीन तुलनात्मक रूप से काफी अधिक (19.87 प्रतिशत) होता है। प्रति इकाई क्षेत्र फसलों की अपेक्षा वृक्ष अधिक मात्रा में चारा प्रदान करते हैं, जो कि कठिन परिस्थितियों में भी टिकाऊ होता है। एक अरडु वृक्ष 700 किलो हरा चारा प्रतिवर्ष उपलब्ध करवा सकता है। हालांकि 8 वर्षीय अरडु वृक्ष औसत रूप में कम से कम 100 किलो हरा चारा अवश्य प्रदान करता है, जिसे साल में दो बार पेड़ की छाटन करके प्राप्त किया जाता है। गम सेनेगल वृक्ष विश्व में गौंद का मुख्य स्रोत होने के साथ–साथ इसकी पत्तियां व फलियां पोषण से भरपूर चारा पशुधन के लिए प्रदान करती हैं। इसमें कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इस वृक्ष की जो पत्तियां झड़ जाती हैं, मृदा की उर्वरक क्षमता को बढ़ाने में योगदान करती हैं।

भेड़, बकरियां एवं ऊंट इसकी पत्तियों एवं फलियों को पसंद करते हैं तथा बड़े चाव से खाते हैं। भारतीय शिरिष औसतन रूप से 5000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से पत्तियों का उत्पादन करता है। पशु, शिरिष की पत्तियों एवं ताजा टहनियों को बड़े चावे से खाते हैं। शिरिष की पत्तियों में 20 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन होता है, जबकि इसकी टहनियों में 10 प्रतिशत तथा सूखी पत्तियों में 13 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन होता है। शिरिष के चारे में कोई भी विषाक्त पदार्थ नहीं पाया जाता है। यह वृक्ष विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं मृदा में भली–भांति पनप जाता है। यहां तक कि यह अम्लीय, क्षारीय एवं लवणीय प्रकार की मृदाओं में भी उगाया जा सकता है।

शुष्क क्षेत्रों में जहां तापमान 50° से. ग्रे. तक पहुँच जाता है तथा वार्षिक वर्षा भी काफी कम (लगभग 250 मि.मी.) होती है, ऐसी परिस्थितियों में खेजड़ी वृक्ष भली–भांति पनपता है तथा इन क्षेत्रों में जब जून से अक्तूबर तक पशुओं के लिये कोई दूसरा हरा चारा नहीं मिलता, खेजड़ी की लुम (पत्तियाँ) भेड़–बकरियों के लिये वरदान साबित होती हैं। इस लुम को सूखी पतियों के रूप में या दूसरे अन्य चारे के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाया जाता है। खेजड़ी की रेतीले क्षेत्र में मृदा क्षरण को रोकने के लिये भी उगाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह खेजड़ी वृक्ष नत्रजन स्थिरीकरण करके मृदा की उर्वरक क्षमता में इजाफा करता है। खेजड़ी का जड़ तंत्र गहरा, एक स्तरीय छाया तथा नत्रजन स्थरीकरण क्षमता के कारण कृषि वानिकी के लिये शुष्क क्षेत्रों के लिऐ सर्वाधिक उपयुक्त वृक्ष है।

बेर भी कृषि वानिकी के लिये उपयुक्त वृक्ष है। इसकी पत्तियाँ, जिन्हें पाला बोला जाता है, बकरियां एवं भेड़ उत्साह के साथ खाती हैं, जो पोषण से भरपूर होती हैं। इसकी पत्तियों को ताजा हरे चारे के रूप में खिलाया जा सकता है या सूखा कर भण्डारित किया जा सकता है तथा जब चारे की कमी हो तब खिलाया जा सकता है।

सुबबूल एक वर्ष में 3–4 बार हरा चारा प्रदान करता है। पौधा लगाने के 5–7 महीने बाद कटाई कर सकते हैं तथा औसतन 40–50 दिन के अंतराल (40 दिन वर्षा ऋतु में तथा 50 दिन शरद एवं गर्मी की ऋतु में) पर कटाई करते हैं। सुबबूल में क्रूड प्रोटीन अधिक मात्रा में पाया जाता है। हरे चारे की उपज प्रति हैक्टेयर 400–500 कुंतल तथा 100 से 125 कुंतल प्रति हैक्टेयर सूखा चारा प्राप्त होता है।

कृषक भाई अपने क्षेत्र में होने वाले विभिन्न वृक्ष एवं झाड़ियों को अपनी आवश्यकता अनुसार फसल के साथ उगाकर विभिन्न समय में होने वाली चारे की कमी को कृषि वानिकी द्वारा पूरा कर सकते हैं।

☆☆☆☆☆

# अव्यवस्थित पशु प्रबन्धन एवं पर्यावरणीय प्रभाव

***सतीश कुमार, चन्द्र नाथ मिश्र, राज पाल मीना एवं विकास गुप्ता***
*गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल (हरियाणा)*

गाय–भैंस, भेड़–बकरी, सुअर, कुक्कट इत्यादि भारतीय कृषक समुदाय के लिये अधिक उपयोगी एवं बहुलाभी सिद्ध होते हैं। यह पशु–पक्षी ग्रामीण जीवन के विभिन्न अंग हैं तथा माँस, अण्डा, दूध एवं अन्य उत्पाद जैसे चमड़ा, ऊन के अलावा कृषि कार्यो के लिये श्रम, माल ढुलाई के लिये यातायात, कृषि पोषण के लिये खाद इत्यादि उत्पाद एवं सेवाएं प्रदान कर कृषकों को आर्थिक रूप से सबल बनाते हैं तथा कृषि को लाभ का कारोबार बनाने में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पशुओं को खुले खेतो एवं चारागाहों में चराने से भी अनेक फायदे होते हैं, जो कि पशुओं की महत्ता को आंकते समय गौण रह जाते हैं, जैसे कि खरपवार नियंत्रण (विशेष रूप से सदाबहार झाड़ियां), विभिन्न प्रकार के पौधों के बीजों को फैलाकर जैव विविधताओं को बनाए रखना मृदा की ऊपरी सतह की पपड़ी को तोड़ना जिससे मृदा कठोर नहीं बनती इत्यादि।

पूर्ण रूप से व्यवस्थित पशुपालन कृषक के खेतों की मृदा गुणवत्ता, जैव विविधता के साथ–साथ कृषक की सामाजिक एवं आर्थिक दशा में सुधार करते हैं। हालांकि, अव्यवस्थित पशुपालन आर्थिक एवं पर्यावरणीय हानि भी पहुँचा सकते हैं। बढ़ती हुई पशुओं की संख्या पर्यावरण को हानि पहुँचाने की क्षमता रखती है। पशुधन के द्वारा सम्भावित पर्यावरणीय हानियाँ तथा उनके निजात के लिये महत्वपूर्ण बिंदु निम्नलिखित प्रकार से है।

## 1. चारागाहों की क्षमता से अधिक पशुओं का चराना

चारागाह की क्षमता से अधिक संख्या में पशुओं को चराना तथा निरन्तर अधिक दिनों तक पशुओं द्वारा चरने से मृदा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। चारागाह सामान्य से कम जैविक पदार्थों का योगदान मृदा में कर पाते हैं, जिसके फलस्वरूप हवा एवं जल द्वारा मृदा क्षरण होने लगता है तथा धीरे–धीरे मृदा की उर्वरक क्षमता में कमी आने लगती है। वह क्षेत्र जहाँ मवेशी पालन मुख्य रूप से चारागाहों पर निर्भर करता है, चारागाहों को संचालन व्यवस्थित ढंग से किया जाता है, जैसे कि पशु की संख्या एवं झुण्ड के अनुरूप चारागाह में चराने का क्षेत्र तथा समय सुनिश्चित करना जो चारे एवं सूखे की उपलब्धता को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस नीति एवं नियंत्रण का ध्यान न रखना या उल्लंघन करना चारागाहों के क्षरण का मुख्य कारण है। चारागाह क्षेत्र में भूजल स्तर का अत्यधिक नीचे गिरना भी चारागाहों के पतन का एक कारण है। कुओं तथा पातालतोड़ कुओं, बोर वैल्स के द्वारा पानी की निकासी भी चारागाहों पर नकारात्मक असर डाल रही है। परिणामस्वरूप, चारागाहों की दशा में गिरावट उन क्षेत्रों मे अधिक देखी गई है, जहां से भूजल का दोहन क्षमता से अधिक हो रहा है।

मानसून के दौरान पशुओं को चराने से चारागाह की मृदा पशुओं की आवाजाही से सख्त बनती है, जिससे मृदा की पानी अवशोषण (अंतःस्पंदन) करने की क्षमता एवं दर में कमी आती है तथा वर्षा जल बहकर (जल अपवाह) चारागाह क्षेत्र से बाहर निकल जाता है, जो अपने साथ मृदा पोषक तत्वों को भी बहा ले जाता है। फलस्वरूप, चारागाह के स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ता है, अतः मानसून के दौरान जीर्णोद्धार के लिये चरागाह को आवश्यक समय देना चाहिए, जो कि अधिकाशतः नहीं दिया जाता है।

विभिन्न प्रकार के पशुधन का संतुलित मिश्रण भी चारागाह के उपयुक्त उपयोग के लिये आवश्यक कारक है। प्रत्येक जाति के मवेशी एवं पशुओं की चरने की आदत तथा पसंदीदा घास एवं झाड़ियां अलग–अलग होती हैं। उदाहरणतः बकरी एवं ऊंट झाड़ियों के शिखर की पत्तियों को पसंद करते हैं तथा बड़े चाव से खाते हैं। इसके विपरीत भेड़, गाय, भैंस जैसे पशु जमीनी स्तर पर उगी घास को चरना पसंद करते हैं। इस प्रकार से पशुओं के असंतुलन से चारागाह के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिये टिकाऊ चारागाह प्रबंधन के लिये मवेशियों की जातियों के संतुलन बनाना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कदम है।

## 2. जैवविविधता एवं पारिस्थितिक ह्रास

अव्यवस्थित पशुधन व्यवसाय, वन्य तथा पालतू जानवरों, वन्य वनस्पति, जलीय एवं आर्द्र भूमि पारिस्थितिक जैव विविधता को नुकसान पहुँचा सकते हैं, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है:

### (i) वन्य तथा पालतू जीवों को नुकसान

चराई तथा मिश्रित फार्म तंत्र द्वारा पशुधन व्यवसाय वन्य जीवों के प्रति एक महत्वपूर्ण चुनौती है। पशु संख्या में वृद्धि तथा संख्या घनत्व में वृद्धि से पशुधन उत्पादन बढ़ता है, लेकिन चारागाह भूमि का विस्तार अभ्यारण क्षेत्रों में होने लगता है तथा ऐसे क्षेत्रों (वन अभ्यारण) का परिवर्तन मिश्रित खेती उपयोग के लिए होने लगता है।

### (ii) पशुधन प्रबन्धकों द्वारा वन्य जीवों को मारने का खतरा

पशुधन प्रबन्धकों द्वारा जंगली जीवों की हत्या एक अलग खतरा है, जिसके पीछे प्रबन्धकों की यह आशंका रहती है की वन्य जीव उनके पशुओं तथा फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं और वे पालतू पशुओं के साथ उनके चारे पर निर्भर करते हैं तथा बीमारियां फैलाते हैं। कुछ प्रबन्धक मानव सुरक्षा की दृष्टि से भी उनकी हत्या करते हैं।

### (iii) क्षेत्रीय पशुधन का विलुप्तीकरण

व्यवस्थित एवं बृहद् पशुधन उत्पादन से पशुधन प्रजातियों में आनुवंशिक विविधता का ह्रास होने का खतरा रहता है, जो अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। क्षेत्रीय नस्लों में वर्तमान तथा भूतकाल में होने वाले रोगों से बचाव की क्षमता रहती है तथा वह क्षेत्रीय पर्यावरण के प्रति अनुकूल होती है। क्षेत्रीय नस्लों को उच्च उत्पादन वाली आयातित प्रजातियों से लगातार विस्थापन आनुवंशिक विविधता को कम करती है।

### (iv) वन तथा वन क्षेत्रों को नुकसान

नवीन चारे एवं उसकी अधिक वृद्धि के लिए जंगल को काटने एवं जलाने से वनस्पति का सार्थक रूप से नुकसान होता है, जिससे क्षेत्रीय परिस्थितिकी में परिवर्तन होता है तथा वैश्विक तापमान में वृद्धि होती है। जंगल की आग से निकलने वाले धुएं से वायु की गुणवत्ता भी खराब होती है।

### (v) चरागाह भूमि का उर्वरता का ह्रास

मिश्रित खेती तन्त्र, जहां खेती की समस्या का समाधान करता है, वहीं चारागाह की भूमि की उर्वरकता को कम करता है। पारंपरिक खेती से मृदा की उर्वरकता में कमी आती है।

### (vi) पानी की गुणवत्ता एवं उपलब्धता में कमी

पशुधन को जीवित रखने के लिये जल का उपयोग अनिवार्य रहता है, जिससे मौसम अथवा समय के अनुसार अन्य आवश्यकताओं हेतु जल की कमी हो जाती है। ऐसा मुख्यतः शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है, जहां पशुधन की जल आपूर्ति हेतु अत्यधिक मात्रा में भूजल का दोहन किया जाता है।

### (vii) जलवायु परिवर्तन

लगभग 17 प्रतिशत वैश्विक मीथेन गैस, जो कि जलवायु परिवर्तन के लिये महत्वपूर्ण घटक है, का उत्पादन पशुओं की पाचन क्रिया से होता है। 20 वर्ष के समय संदर्भ में मीथेन गैस, कार्बन–डाई–आक्साइड गैस की अपेक्षा 5–6 गुणा अधिक वैश्विक तापमान में वृद्धि के लिये जिम्मेवार होगी। इसके अलावा जंगलों को काटने से कार्बन अधिग्रहण की क्षमता भी कम होती जा रही है।

### (viii) खादर भूमि तथा वनस्पति का नुकसान

नदियों के किनारे स्थित खादर भूमि पर चराई से मृदा एवं वनस्पति का नुकसान होता है, जिससे मृदा संघनन एवं क्षरण शामिल है। चारे वाली फसलों की कुछ प्रजातियों के साथ क्षेत्र में न पाए जाने वाले ऐसे पौधे एवं झाड़ियाँ, जो तीव्र गति से फैलते हैं, भी आ जाते हैं; जो संदर्भित क्षेत्र की पारिस्थितिक को प्रभावित करते हैं।

लेख का सार यह है कि पशुपालन क्षेत्र की पारिस्थितिकी, जलवायु, वनस्पति एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों को परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं तथा स्वयं मवेशी भी व्यापक रूप से प्रभावित होते हैं। अतः क्षेत्र विशेष के प्राकृतिक संसाधनों जैसे कि वनस्पति, जल की उपलब्धता, जलवायु इत्यादि की दृष्टि से उपयुक्त पशु प्रजातियों का चयन, जो वहाँ की जलवायु के अनुकूल हो, विभिन्न प्रकार के मवेशियों का संतुलन मिश्रण, चारागाह की क्षमता के अनुसार मवेशियों की संख्या इत्यादि का सही निर्णय लेने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय घास, झाड़ियां एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों को विशेष महत्व देने की भी आवश्यकता है।

☆☆☆☆☆

# विभिन्न भाषाओं के लोक साहित्य में पशुधन का महत्व

***सतपाल, पी के विज एवं बी के जोशी***
*राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)*

जब से मनुष्य ने सभ्य समाज के रूप में रहने की शुरूआत की है तब से मनुष्य ने कृषि के साथ–साथ पशुओं की कुछ जातियों को पालतू बनाकर उसे अपनी आजीविका का आधार बनाया है। धीरे–धीरे मनुष्य ने सभ्यता के विकास के साथ–साथ भाषा का विकास भी किया। भाषा अपने विचारों के आदान प्रदान से प्रगति करके मनुष्य का मनोरंजन का साधन बनी। विभिन्न देशों में अलग–अलग भाषाओं में गीत लिखे गये। इसी तरह भारत में भी विभिन्न बोलियों /भाषाओं में लोक गीत लिखे गये। आरंभिक दिनों में मनुष्य अपने आस–पास के परिवेश से प्रभावित रहता था। अतः लोक गीतों में भी अपने आस–पास के परिवेश, जीवन के विभिन्न उतार–चढ़ाव, सुख दुख की झलक लोक गीतों में स्पष्ट दिखाई देती थी। मनुष्य अपने पालतू पशुओं के प्रति प्रेम की झलक अपने लोक गीतों के द्वारा स्पष्ट करता था। ऐसा हमें प्रत्येक भाषा के लोक–साहित्य में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

## पंजाबी लोक साहित्य व गीतों में पालतू पशुओं से प्रेम

पंजाब पंच+आब दो शब्दों के योग से बना है। पंच का शाब्दिक अर्थ पाँच से तथा आब का अर्थ पानी से है। जिसका मतलब है पाँच पानियों की धरती है; पंजाब में पाँच नदियां जिनमें रावी, व्यास, सतलुज, चिनाब तथा घग्गर बहती हैं। पानी की बहुतायत होने के कारण यह क्षेत्र सदियों से कृषि से सम्पन्न रहा है। कृषि व हरियाली की अधिकता के कारण यहां के लोगों का पशु पालन दूसरा प्रमुख व्यवसाय रहा है। धन–धान्य से सम्पन्नता के कारण यहां की संस्कृति, साहित्य तथा लोक–गीत, लोक–नृत्यों ने भी बहुत विकास किया। कुछ वर्ष पहले तक कृषि कार्यों में भी पालतू पशुओं का उपयोग किया जाता रहा है। पंजाब के प्रत्येक घर में दुधारू पशु का होना अति आवश्यक माना जाता है। ग्रामीण घर में घी–दूध की पर्याप्त मात्रा होने की वजह से यहां के लोगों की ऊँची–लम्बी व मजबूत कद–काठी होती है। मर्दों में ही नहीं, औरतों में भी छः फीट ऊँचा कद व मजबूत शरीर देखने को मिलता है। पंजाब के लोग हर खुशी का इजहार नाच–गाकर करते हैं। अखाड़ा प्रथा यहां के मनोरंजन का प्रमुख आकर्षण रहा है। मंच सम्मेलन गीत–संगीत का एक ऐसा समारोह होता है, जहां लोक–गायक लोगों के समक्ष खुले मंच पर गीत गायन करते हैं।

पंजाबी लोक नाचों में गिद्धा व भंगड़ा का एक विशेष स्थान है। इसके अंतर्गत बोलियों का अलग महत्व है। बोलियां समूह में गाये जाने वाले गीतों का ही एक रूप है। शादी विवाह व हर तरह के खुशी के मौके पर इसका प्रचलन है। इन बोलियों में भी पशुओं के प्रेम पर अपना अलग महत्व मिलता है।

विशेषतः पंजाबी लोक साहित्य/गीतों में हमारे पशुधन से प्रेम का एक सुंदर नजारा देखने को मिलता है। जिसमें सबसे पहले हम के. एस. नरूला द्वारा लिखित व फोल्क पंजाबी गायक जगमोहन कौर द्वारा गाया गया निम्नलिखित गीत ले सकते हैं–

बापु वे अड्ड हुनी आ;

इक गां लै दे इक मैंह लै दे,

दो बल्द टल्लियां वाले,

बोती लै दे झांजरां वाली वे,

अड्ड हुनी आं............

उपरोक्त गीत में एक बहू अपने ससुर से अपने संयुक्त परिवार में से अलग करने का अनुरोध कर रही है। गीत की एक ही पंक्ति में बहू ने अलग होने के साथ–साथ अपनी पूरी आजीविका का साधन मांग लिया है। जिसमें उसने एक गाय, एक भैंस, दो बैल तथा एक घोड़ी को मांगा है। इसमें उसने किसी और जायदाद अथवा धन दौलत देने का कोई आग्रह नहीं किया है। चूँकि बहू जानती है

कि जिस घर में उपरोक्त पालतू पशु हैं उसके पूरे जीवन भर की कमाई, रोजी–रोटी का जुगाड़ सुनिश्चित हो जाता है। यह पंजाबी लोक–साहित्य ही है जिसमें से ये गीत निकल कर आते हैं और पशुओं से प्रेम की झलक मिलती है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि हीर–रांझा पंजाबी साहित्य में एक सर्वश्रेष्ठ प्रेम कथा है। रांझा जो कि एक खाते–पीते जमींदार परिवार से संबंधित था। हीर की सुंदरता पर मोहित होकर उनके घर में भैंसों को चराने वाला नौकर बन जाता है। बारह वर्ष तक वह हीर के घर में नौकर के रूप में गुजार देता है। लेकिन हीर–रांझे का प्रेम जग–जाहिर होने पर हीर के मां–बाप रांझे से उसका विवाह स्वीकार नहीं करते तथा उसका विवाह खेड़ों के साथ कर देते हैं। इस संदर्भ में पंजाबी के प्रसिद्ध लोक गायक व लेखक गुरदास मान का लिखा व गाया निम्नलिखित गीत सराहनीय है:

मझियां चराण वेले रांझा, डोली वेले होर दी बणी

इस गीत में रांझा अपनी हीर को उलाहना दे रहा है कि बारह वर्ष तक तुम्हारी भैंसे मैने चराई थी सिर्फ तुम्हारे लिये लेकिन फिर भी तुम किसी और के साथ विवाह करने जा रही हो।

पंजाब में लोहड़ी बड़े ही उल्लास तथा मस्ती का त्यौहार माना जाता है। जिन–जिन घरों में पूर्व वर्ष के दौरान बेटे की शादी अथवा पुत्र का जन्म हुआ होता है। वो सभी परिवार इस दिन पर विशेष आयोजन करते हैं। संग–संबंधियों को बुलाकर विशेष भोज का आयोजन किया जाता है। त्यौहार वाले दिन से लगभग 15 दिन पूर्व बच्चे–बच्चियां लोहड़ी का त्यौहार मनाने के लिये हर घर में जाते हैं। शादी व पुत्र जन्म वाले घरों में विशेष तौर पर जाया जाता है। इस अवसर पर विभिन्न लोहड़ी गीत गाये जाते हैं; यथा:

पा माई लोहड़ी, तेरी जीवे जोड़ी ,

तेरियां जीवण मझियां गाईयां, असीं केहड़े वेले दिया आईयां,

साडे पैरां थले रोड़, सानूं छेती–छेती तोर,

पंजाबी साहित्य में जीवन के हर क्षेत्र में पालतू पशुओं से प्रेम का इजहार हमें देखने को स्पष्ट मिलता है। घर में बधाई लेने के लिये आये हुए बच्चे भी पालतू पशुओं के चिरजीवी होने की दुआएं देते हैं।

## सिख साहित्य व गुरू ग्रंथ साहिब में पशु प्रेम

सिख इतिहास का अगर हम अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि सभी दस गुरूओं ने मनुष्य को कीरत करके खाने के लिये कहा है। इसका अर्थ है कि जब तक हम अपने हाथों से मेहनत करके नहीं कमाते तब तक हमें खाने का कोई हक नहीं है। प्रथम गुरू नानक देव जी ने स्वयं पशुओं को चराकर, अपने हाथों से खेती करके आम जन–जीवन तक अपना यह संदेश फैलाया। गुरू ग्रंथ साहिब में भी पशुओं से प्रेम को इतने स्पष्ट अक्षरों में प्रदर्शित किया गया है; कि जिसका पूरा प्रभाव चेतना पर है जैसे कि:–

पशु मिलहि चंगियाई, खड़ खावहि अमृत देह

भाव यह है कि मनुष्य जीवन से पशु ही अच्छा है जो कि खल/चारा इत्यादि खाकर अमृत जैसा दूध हमें देता है। गुरू ग्रंथ साहिब में पालतू पशुओं से प्रेम का संदेश दिया गया है, जो कि गुरूओं की पशु संरक्षण के लिये एक बहुत ही बढ़िया पहल थी।

पंजाबी साहित्य में श्री धनी राम चात्रक का बहुत ही विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपनी एक काव्य रचना में घरों में पालतू पशुओं के महत्व पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं–

पंजाब करां की सिफत तेरी, शानां दे सभ सामान तेरे,

जल पौण तेरी, हरियाली तेरी, दरया, पर्वत, मैदान तेरे,

घर तेरे गांवां मझियां ने, दूध घियों दी लहर लगाई है,

बाहर बलदां दियां जोगां ने, खलगत दी अग बुझाई है,

बाबा नानक, बाबा फरीद, आपणी छाती ते पाले तूँ,

दुनियां नू चानण देण लई, कई रोशन दीवे बाले तूँ,

क्योंकि पंजाब भारत का एक समृद्ध राज्य है,अतः कवि ने पंजाब राज्य पर केन्द्रित करके अपनी रचना की है। कवि कहता है कि पंजाब की कितनी ही तारीफ क्यों न करूं वह कम है। इस राज्य के हरे–भरे खेत, मैदान, हवा, पानी, पहाड़ों की छटा निराली है। राज्य में गाय, भैंसों एवं बैलों की संख्या भरपूर है। घी, दूध की भी कमी नहीं है। यह राज्य अपना ही नहीं बल्कि दूसरे क्षेत्रों का भी पेट भरता है। यहां बाबा नानक, बाबा फरीद जैसे महान गुरूओं ने जन्म लिया है। जिन्होंने पूरे विश्व को रोशन किया है। अर्थ है कि पंजाबी साहित्य में पालतू पशुओं के संरक्षण का संदेश हमें हर महान लेखक की रचना में स्पष्ट दिखाई देता है।

जहां पंजाबी साहित्य में पशुओं का चित्रण है, वहीं हिंदी साहित्य में भी इसका विशेष महत्व है। श्री कृष्ण के एक भजन में एक अलग ही छटा दिखाई गई है।

छोटी–छोटी गईयां, छोटे–छोटे ग्वाल

छोटों सो मेरो मदन गोपाल.....

आगे–आगे गईयां, पीछे–पीछे ग्वाल

बीच में मेरों मदन गोपाल........

उपरोक्त पंक्तियों में श्री कृष्ण के ग्वाल रूप का वर्णन करते हुए गायक ने कहा है कि जैसे छोटी–छोटी गाय और छोटे–छोटे ग्वाल है, उसी प्रकार श्री कृष्ण भी बाल्यावस्था में ग्वाल रूप में छोटी–छोटी गईयां चरा रहे है तथा ग्वालों और गायों के बीच में स्वयं विराजमान है। श्री कृष्ण काल में गायों को माता की पदवी दी गई है तथा देव समान पूजा जाता है। कहा जाता है कि श्री कृष्ण काल में गाय के दूध की मात्रा इतनी अधिक थी कि नंदगांव का दूध और मक्खन मथुरा भेजा जाता था। श्री कृष्ण भी अपने मित्रों के साथ गोपियों के घर जा–जा कर माखन चोरी करके खाया करते थे तभी उनका नाम माखन–चोर रखा था।

जीवन का उत्कर्ष हमारी गऊ माता

धरती मां को पावन करती गऊ माता

उपरोक्त लिखी गई पंक्तियां राजस्थानी गीत में ली गई है। इस गीत में गाय को जीवन का उत्कर्ष बताया गया है। बताया गया है कि गाय के गोबर से धरती पवित्र तथा उपजाऊ हो जाती है। इसके गोबर को हवन सामग्री के प्रयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त गाय जो गैसे छोड़ती है उससे वातावरण ऑक्सीजनमय हो जाता है। इसके अतिरिक्त गऊ के मूत्र से कैंसर संबधी और नेत्र संबधी विकारों को दूर किया जा सकता है। इसके दूध से घी, मक्खन, खोया बनाया जाता है, जो मिठाई बनाने में काम आता है। शिशु को मां के दूध की कमी होने पर गाय के दूध का सेवन करवाना उत्तम बताया गया है।

गऊ माता गऊ माता प्यारी अपनी गऊ माता

देवों का है वास इसी में प्यारी अपनी गऊ माता

धरती का है रूप अनुपम प्यार अपनी गऊ माता

जीवन की है मोक्षदायिनी पूज्य हमारी गऊ माता

गऊ माता गऊ माता प्यारी अपनी गऊ माता

उपरोक्त लिखित पंक्तियां विश्व मंगल गऊ–ग्राम यात्रा से संबधित भजन से ली गई है। इस भजन से गऊ को प्यारा और मनभावन कहा गया है। गऊ को माता की उपाधि दी गई है। और गाय में तैंतीस करोड़ देवी–देवताओं का विराजमान होना बताया गया है।

जिस धरती पर गाय का निवास होता है उस धरती का रूप अनुपम होता है और वह उपजाऊ होती है। गाय मनुष्य के जीवन को मोक्ष प्रदान करती है और पूज्यनीय गाय की सेवा से हमें देवी–देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

जहां गाय को माता कह कर सम्मानित किया है और विभिन्न प्रकार के लाभ भी प्राप्त किए जाते हैं। भैंसों को हमारे साहित्य में विशेष स्थान है। भैंस भी हमारी पालतू पशु है और इनका दूध पीने के लिए अति उतम है।

जहां हिंदू धर्म में गाय की सेवा अति उत्तम बताई गई है वहीं ईसाई धर्म में पशुओं के लिए कोई कम आस्था नहीं है। ईसाई धर्म के मसीहा की माता मैरी ने प्रभु यीशु को भेड़ों के तबेले में जन्म दिया। प्रभु यीशु को भेड़–बकरियों से अगाध स्नेह रहा। उनका भेड़–बकरियों के प्रति संतान–पिता का संबध रहा। प्रभु यीशु के कई चित्रों में भेड़–बकरियों के प्रति उनके स्नेह को देखा जा सकता है।

जैसे सृष्टि के मसीहा प्रभु यीशु का मेमने, भेड़–बकरियों के प्रति और श्री कृष्ण का गाय के प्रति विशेष संबंध है, उसी प्रकार मनुष्य को पालतू जीवों के प्रति अगाध स्नेह रखना चाहिए। जैसे एक मां का अपने शिशु के प्रति विशेष संबंध होता है उसी प्रकार हमें पशुओं के प्रति स्नेह रखना चाहिए। जब सृष्टि के मसीहा ने गाय और मेमनें को अपने हृदय में स्थान दिया है तो हमारा भी यही उद्देश्य है कि हम भी उनके पद–चिन्हों पर चले।

उपरोक्त लेख से हम भली–भांति समझ सकते हैं कि विभिन्न समाजों में तथा उनके साहित्य में पशुधन का विशेष महत्व रहा है। क्योंकि जब से मनुष्य ने सभ्य होकर रहना सीखा है, तब से पालतू पशु उसके जीवन का विशेष अंग रहा है। लेकिन वर्तमान में मनुष्य की बढ़ती हुई आबादी, बढ़ती आवश्यकताओं तथा आलसी जीवन शैली के कारण पशुधन के संरक्षण की ओर उदासीनता भी बढ़ी है। जिसके कारण कई पशु नस्लें नष्ट हो चुकी है और कुछ विनाश की कगार पर है। इस विषय में लेखकों का मत है कि पशु संरक्षण के कार्य को मानव संस्कृति से अधिक से अधिक जोड़ा जाए।

☆☆☆☆☆

# पशुधन नस्ल पंजीकरण: राष्ट्रीय सम्पदा की सुरक्षा

***पी के विज, एस के निरंजन, एम एस टांटिया एवं बी के जोशी***
*राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)*

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में पालतू पशु आनुवंशिक संपदा दूध, मांस, अंडे, रेशा, भार वाहन शक्ति और खाद के माध्यम से योगदान कर अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनी हुई है। खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार पालतू पशु आनुवंशिक संपदा से जानवरों की उन प्रजातियों को रखा गया है जिन्हें हम खाद्य और कृषि के उत्पादन के लिए प्रयोग या तो कर रहे हैं या किया जा सकता है। भारत को पशु जैव विविधता, विशेष रूप से पालतू जानवरों के लिए विश्व के मुख्य केंद्रों में से एक माना जाता है। वर्तमान में भारत में पशुओं और मुर्गियों की 144 पंजीकृत नस्लें हैं, जिसमें गाय की 37, भैंस की 13, भेड़ों की 39, बकरी की 23, घोड़े और ट्टटू की 6, सुअर की 2, ऊंट की 6, गधे की 1 और मुर्गी की 15 नस्लें शामिल हैं। इसके अलावा खच्चर, याक, मिथुन, बतख, बटेर जैसी अन्य प्रजातियों की नस्लों को अच्छी तरह विवरणीय नस्लों में वर्गीकृत किया जाना अभी बाकी है।

भारत में विविध कृषि परिस्थितिकी क्षेत्र होने के कारण विभिन्न पशुधन प्रजातियों की बड़ी संख्या में नस्लों को विकसित होने में मदद मिली है। पालतू पशुओं और मुर्गियों की नस्लों की यह विविधता विशिष्ट परिस्थितिकी तंत्र के अंतर्गत विकास की वजह से विकसित हुई है। कई जटिल और अंतः क्रियात्मक कारकों जैसे कि मानव की जरूरत, एक प्रजाति की अनुकूलन क्षमता, कृषि जलवायु परिस्थितियों तथा चयन और पशुपालन प्रथाओं में एक नस्ल के उद्दभव होने में योगदान किया है। प्रत्येक नस्ल/प्रकार/उपभेदों को विशेष कृषि परिस्थितिकी क्षेत्रों में विशिष्ट उद्देश्य हेतु विशिष्ट जीनों का एक समग्र रूप माना जाता है। नस्लें अच्छी तरह से अपने प्राकृतिक निवास के लिए अनुकूल होती हैं। आनुवंशिकी और प्रजनन विज्ञान के अनुप्रयोग से देसी और विदेशी जर्मप्लाम के बीच संकर प्रजनन के माध्यम से भी अधिक कुशल व उच्च उत्पादन वाले कृषि पशुओं का सृजन हुआ है। इस प्रक्रिया में पशुओं के कई मूल्यवान उपभेद भी विकसित हुए हैं।

**पंजीकरण का महत्व–** आनुवंशिक संसाधनों के लिए जैव विविधता सम्मेलन में राष्ट्रीय संप्रभुता के नए युग के आगमन पर पशुओं और मुर्गियों की नस्लों का वर्णन और सूचीबद्ध करने के लिए एक नए दृष्टिकोण की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) और बौद्धिक संपदा अधिकारों के वैश्विक परिदृश्य में स्थानीय पशु आनुवंशिक विविधता की रक्षा करने की जरूरत है, जो साथ ही नए उन्नत पशु नस्लों को विकसित करने वालो को भी मान्यता प्रदान करने में सक्षम होंगे। यह एक प्रभावी सुइ जेनेरिस प्रणाली द्वारा अपने पशुओं और मुर्गियों के आनुवांशिक संसाधनों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए सदस्य देशों को प्रेरित करता है। साथ ही, यह अच्छी तरह से परिभाषित विशेषताओं के साथ बहुमूल्य संप्रभु आनुवांशिक संसाधनों की एक प्रामाणिक राष्ट्रीय प्रलेखन प्रणाली विकसित करने की मांग करता है।

प्रत्येक देश की पशु आनुवंशिक संसाधन की विविधता, वितरण, बुनियादी विशेषताओं, तुलनात्मक प्रदर्शन और वर्तमान स्थिति को समझना उनके कुशल और सतत उपयोग, विकास और संरक्षण के लिए आवश्यक हैं। पूर्ण राष्ट्रीय सूची और रूझानों और जुड़े जोखिम की आवधिक निगरानी पशु आनुवंशिक संसाधनों के प्रभावी प्रबंधन के लिए एक बुनियादी आवश्यकता है। इस तरह की जानकारी के बिना, उनके मूल्य मान्यता की जानकारी होने एवं उन्हें संरक्षित करने के लिए उठाए गए उपायों से पहले ही कुछ नस्ल की पशु संख्या में काफी गिरावट आ सकती है।

1990 के दशक के अंत तक, दक्षिण एशिया में विभिन्न संस्थाओं गैर सरकारी संगठनों और सरकारों ने स्थानीय समुदायों के जैविक संसाधनों और ज्ञान, कौशल और तकनीक को दस्तावेजी करने का प्रयास किया। इस तरह के दस्तावेज जैव चोरी, दावा स्वामित्व को नियंत्रित, जैव विविधता के संरक्षण, मूल्य में वृद्धि, जैव पूर्वेक्षण को बढ़ावा देने और स्थानीय समुदायों के बीच ज्ञान के गौरव की भावना पैदा कर सकते हैं। इस तरह के प्रलेखन प्रक्रिया ने स्थानीय समुदायों, नीति निर्माताओं और अनुसंधान और विकास संगठन के बीच जागरूकता और स्वामित्व को बढ़ाने की भावना पैदा करने में मदद की है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर.) ने ज्ञात विशेषताओं के साथ मूल्यवान संप्रभु आनुवंशिक संसाधनो की एक प्रामाणिक राष्ट्रीय प्रलेखन प्रणाली की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (एन.बी.ए.जी.आर.) करनाल में 'पशु जर्मप्लाजम के पंजीकरण' के लिए एक तंत्र की शुरूआत की। यह बहुमूल्य पशु आनुवंशिक विविधता को संरक्षण प्रदान करेगा और साथ ही इससे पशु नस्लों का आनुवंशिक सुधार भी होगा। यह तंत्र राष्ट्रीय स्तर पर पशु आनुवंशिक संसाधनों के पंजीकरण के लिए एकमात्र मान्यता प्राप्त प्रक्रिया है। पंजीकरण प्रक्रिया आनुवंशिक सामग्री के विवरण और प्रलेखन के लिए एक महत्वपूर्ण मार्ग है। एक बार पंजीकृत होने के बाद, इन आनुवंशिक सामग्री को सार्वजनिक क्षेत्र में शामिल किया जाता है।

भारतीय पशुओं और मुर्गियों का पंजीकरण प्रक्रिया एक नस्ल की अवधारणा के आसपास घूमती है। वास्तव में एक नस्ल को परिभाषित करना कठिन है। लेकिन एफ ए ओ ने नस्ल को परिभाषित किया है जिसको व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है। इस परिभाषा के अनुसार नस्ल हैं:

(क) परिभाष्य और पहचान योग्य बाह्य विशेषताओं के साथ पालतू पशुओं का एक उप विशिष्ट समूह जो एक ही प्रजाति के भीतर अन्य इसी तरह से परिभाषित समूहों से दृश्य मूल्यांकन द्वारा अलग किये जाने मे सक्षम हो;

या

(ख) समान फीनोटाइप समूहों से अपनी अलग पहचान के एक समूह जिसके लिए भौगोलिक और /या सांस्कृतिक पृथक्करण स्वीकृति किया गया हो।

पशु जर्मप्लाज्म पंजीकरण एक प्रजाति के भीतर नस्ल/प्रकार/उपभेद/किस्म स्तर पर किए जाने की आवश्यकता है। प्रजाति के लिहाज से राष्ट्रीय पशु जर्मप्लाज्म पंजीकरण एन.बी.ए.जी.आर., करनाल में किया जाएगा।

## पंजीकरण के तौर–तरीके

### नई नस्लों का पंजीकरण

पालतू पशुओं की नस्लों, जो अद्वितीय, स्थिर व एकसमान हैं और शैक्षिक, वैज्ञानिक या वाणिज्यिक मूल्य की संभावित विशेषताओं वाली हैं, को पंजीकृत किया जा सकता है।

### पंजीकरण के लिए पात्रता मानदंड

कम से कम 1000 जानवरों की किसी भी आबादी को एक नस्ल के रूप में पंजीकरण के लिए विचार किया जाएगा। इन जानवरों को आवेदक/नस्ल समाज/ गैर सरकारी संगठन/क्षेत्र में स्थित सरकारी एजेंसी/ किसानों द्वारा रखा जा सकता है। पंजीकरण हेतु सभी दावों के लिए प्रस्तुत सामग्री के साथ संबंधित विशिष्टता, पुनुर्त्पत्ति और मूल्य के रूप में वैज्ञानिक सबूत निम्न रूप में साथ होना चाहिए।

– मानक सहकर्मी समीक्षा पत्रिका (पुनर्मुद्रण की एक प्रतिलिपि प्रस्तुत की जाये) में प्रकाशन।

  और/या

– अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (ए.आई.सी.आर.पी.), नेटवर्क परियोजना, तदर्थ योजनाएं आदि जैसे अनुसंधान कार्यक्रमों के तहत कम से कम तीन साल के लिए मूल्यांकन आंकड़े, जो दस्तावेजों के प्रासंगिक निष्कर्षों का समर्थन करते हैं या संम्बधित निदेशक/परियोजना निदेशक (पी.डी.)/ परियोजना समन्वयक (पी.सी.) के द्वारा सत्यापित हो।

  और/ या

– संस्थान की वार्षिक रिपोर्ट या किसी अन्य ऐसी रिपोर्टों में जर्मप्लाज्म का संभावित मूल्य के बारे में जानकारी का प्रकाशन

  और/ या

– नस्ल की नवीनता और विशिष्टता के बारे में राज्य के पशुपालन विभाग/पशुधन विकास बोर्ड ने सिफारिश का दावा किया हो।

**कौन आवेदन कर सकते हैं:**

आवेदन भारत के किसी भी नागरिक/भारत के संविधान के अनुसार दर्ज नस्ल समाज/गैर संरकारी संगठन/ सरकारी एजेंसी द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

**पंजीकरण की वैधता:**

पंजीकरण की वैधता अवधि 25 वर्ष होगी।

**पंजीकरण सामग्री की अधिसूचना**

पंजीकरण के लिए अनुमोदित सभी नस्लों आधिकारिकतौर पर पंजीकरण संख्या के साथ आवेदकों को अधिसूचित किया जाएगा।

एक प्रमाण पत्र भी आवेदक को इस संबंध में जारी किया जायेगा।

आधिकारिक अधिसूचना कम से कम एक पृष्ठ का संक्षिप्त विवरण के साथ भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली–110012 द्वारा प्रकाशित इडियन जर्नल ऑफ एनिमल सांइस में प्रकाशित की जाएगी।

पंजीकृत नस्ल का एक सार भी निम्नलिखित प्रकाशनों में प्रकाशित किया जाएगा

– निदेशक, एन.बी.ए.जी.आर. द्वारा प्रकाशित समाचार पत्रिका

– आई.सी.ए.आर. समाचार–प्रकाशन और सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित, कृषि अनुसंधान भवन, भारतीय–कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।

– एन.बी.ए.जी.आर., आई.सी.ए.आर. वेबसाइट।

**अधिसूचना निरस्तीकरण**

अधिसूचना झूठे दावे/दावों या विवादित बौद्धिक संपदा अधिकार के दावे के मामले में पंजीयन समिति क्षरा रद्द की जाएगी। काउंटर दावे के लिए अपील, यदि कोई हो, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा प्रकाशित इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंस में अधिसूचना प्रकाशन के तीन महीने की अवधि के भीतर पंजीकरण समिति तक पहुँचनी चाहिए।

**नस्ल पंजीकरण के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने की प्रक्रिया:**

1. आवेदन और सामग्री की प्रस्तुति

   प्रस्तावित नस्लों के पंजीकरण के लिए सभी आवेदन पत्र निम्न पत्ते पर प्रस्तुत किये जाने चाहिए।

   निदेशक, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, पोस्ट बॉक्स 129 करनाल–132001 हरियणा, फोन 0184-2267918, फैक्स: 0184-2267654, ईमेल: directornbagr@gmail.com.

2. आवेदक को संबंधित दस्तावेज, नस्ल का उचित मूल्यांकन करने के लिए साहित्य (कम से कम एक पृष्ठ) के साथ आवेदन की 3 प्रतियां प्रस्तुत करनी होगी। directornbagr@gmail.com पर आवेदन और विवरणक की ईमेल भेजें।

3. आवेदन आवेदक द्वारा हस्ताक्षरित तथा संबंधित राज्य या उनके प्रतिनिधि के पशुपालन निदेशक, विभाग द्वारा रबड़ की मुहर के साथ प्रतिहस्ताक्षरित किया जाना चाहिए।

4. आवेदन मानक विवरणक (संबंधित प्रजातियों के अनुसार) का उपयोग कर नस्ल के पूर्ण विवरण के साथ किया जाना चाहिए।

5. नस्ल का एक विस्तृत इतिहास भेजें।

6. अंतर, भेद, और विवरण की सूची भेजे जो आसपास के क्षेत्र या कहीं और अन्य नस्लों की तुलना में इस नस्ल के लिए विशिष्ट है।

7. नस्ल के प्रतिनिधि फोटो (वयस्क नर, मादा, युवा पशु और झुंड) भेजें।

8. आवेदक या उसके संगठन द्वारा नस्ल मानकों के अनुरूप उस नस्ल के पंजीकृत जानवरों की एक सूची जमा करें।

9. नस्ल को कम से कम 10 पीढ़ियों को पूरा करना चाहिए।

10. नस्ल के कम से कम तीन अलग अलग प्रजनक/मालिकों से पत्र संलग्न हो, जिसमें स्पष्ट करना चाहिए।
    - उनका ऐसा मानना क्यों है कि यह एक मान्यता प्राप्त नस्ल बननी चाहिए।
    - वे नस्ल कितने समय से प्रजनन कर रहे हैं?
    - एक अलग पहचान के रूप में नस्ल पहचान के कारण बताएं।
    - इस नस्ल की स्थापना के लिए क्या किया गया है जैसे कि प्रजनन रणनीतियों, माता पिता का स्टॉक आदि?
    - आगे एक लंबी अवधि के परिपेक्ष्य में इस नस्ल में सुधार के लिए क्या सुझाव है?
    - इस नस्ल को क्या अन्य सभी नस्लों से स्पष्ट रूप से अलग और विशिष्ट बनाता है।

## मुर्गी की किस्म/उपभेद/लाइन का पंजीकरण

### पंजीकरण के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए प्रक्रिया

1. आवेदन के दस्तावेजों के साथ प्रस्तुति

   प्रस्तावित किस्म/उपभेद/लाइन के पंजीकरण के लिए निम्न पते पर आवेदन प्रस्तुत किया जाना चाहिएः

   निदेशक, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, पोस्ट बॉक्स 129 करनाल–132001 हरियणा, फोन 0184-2267918, फैक्सः 0184-2267654, ईमेलः directornbagr@gmail.com.

2. आवेदक को संबंधित दस्तावेज, किस्म/उपभेद/लाइन का उचित मूल्यांकन करने के लिए साहित्य (कम से कम एक पृष्ठ) के साथ आवेदन की 3 प्रतियां प्रस्तुत करनी होगी। directornbagr@gmail.com के लिए आवेदन और विवरणक की ईमेल भेजे।

3. आवेदन आवेदक द्वारा हस्ताक्षरित तथा संबंधित राज्य या उनके प्रतिनिधि के पशुपालन निदेशक, विभाग द्वारा रबड़ की मोहर के साथ प्रतिहस्ताक्षरित किया जाना चाहिए।

4. आवेदन किस्म/उपभेद/लाइन के मानक विवरणक का उपयोग कर पूर्ण विवरण के साथ किया जाना चाहिए।

5. किस्म/उपभेद/लाइन के विकास का एक विस्तृत इतिहास भेजें।

6. देश में उपलब्ध अन्य किस्म/उपभेद/लाइन की तुलना में किस्म/उपभेद/लाइन की विशिष्टता की सूची भेजें।

7. विभिन्न प्रकार के किस्म/उपभेद/लाइन (व्यस्क नर, मादा, युवा और झुंड) की प्रतिनिधि तस्वीरें भेजें।

8. किस्म/उपभेद/लाइन को कम से कम 8 पीढ़ियों को पूरा किया हो।

9. आवेदक को यह प्रमाणित करना होगाः
   – किस्म/उपभेद/लाइन जिसका अस्तित्व आवेदन दाखिल करने के समय में सामान्य ज्ञान की बात है अन्य किस्म/उपभेद/लाइन से अलग है।
   – यह पर्याप्त, एकसमान और स्थिर है।

### पंजीकरण के लिए पात्रता मानदंड:

कम से कम 1000 पक्षियों की आबादी किस्म/उपभेद/लाइन के रूप में पंजीकरण के लिए विचार किया जाएगा।

पंजीकरण हेतु सभी दावों के लिए प्रस्तुत सामग्री के साथ संबंधित विशिष्टता पुनुर्त्तपत्ति और मूल्य के रूप में वैज्ञानिक सबूत निम्न रूप में साथ होना चाहिए–

– मानम सहकर्मी समीक्षा पत्रिका (पुनर्मुद्रण की एक प्रतिलिपि प्रस्तुत की जाये) में प्रकाशन।

  और/ या

– अखिल भारतीय समन्वियत अनुसंधान परियोजना (ए.आई.सी.आर.पी.), नेटवर्क परियोजना, तदर्थ योजनाएं, आदि जैसे अनुसंधान कार्यक्रमों के तहत कम से कम तीन साल के लिए मूल्यांकन आंकड़े जो दस्तावेजों के प्रासंगिक निष्कर्षो का समर्थन करते हैं या सम्बंधित निदेशक/परियोजना निदेशक (पी.डी.)/परियोजना समन्वयक (पी.सी.) के द्वारा सत्यापित हो।

  और/ या

– संस्थान की वार्षिक रिपोर्ट या किसी अन्य ऐसी रिपोर्टों में जर्मप्लाज्म का संभावित मूल्य के बारे में जानकारी का प्रकाशन

## नस्ल पंजीकरण

### परिग्रहण संख्या और वर्तमान नस्लों का पंजीकरण

परिग्रहण एक अल्फा न्यूमेरिक कोड संख्या का उपयोग कर निम्न स्वरूप में सभी नस्लों के लिए डिजाइन किया गया है।

INDIA_SPECIES NAME_ABCD_BREED NAME XYEFG

AB= मुख्य राज्य के लिए दो अंकों का संख्यात्मक कोड

CD= दूसरे राज्य के लिए दो अंकों का संख्यात्मक कोड

XY= प्रजातियों के लिए दो अंकों का संख्यात्मक कोड

EFG= नस्ल के लिए तीन अंकों का संख्यात्मक कोड

परिग्रहण संख्या पशुओं और मुर्गी की विभिन्न प्रजातियों के वर्तमान नस्लों में से प्रत्येक के लिए दी गयी है जिनको इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंस 78(1) 127-130, (2008) में एक विशेष सुविधा के रूप में प्रकाशित किया गया है। यह परिग्रहण संख्या http://www.nbagr.res.in/Accessionbreed.html पर भी उपलब्ध है।

नई नस्लो के पंजीकरण के लिए दिशानिर्देश, विवरणक और आवेदन प्रपत्र (http:// www.nbagr.res.in/guideline.html) तैयार किया गया है और नस्लों के रूप में नई आबादी के पंजीकरण के लिए संभावित हितधारकों को वितरित किया जा रहा है। अब तक 109 नस्लों (11 भैंस, 29 गाय, 23 बकरी और 26 भेडे, 13 चिकन और 4 घोड़े, 2 खच्चर, 1 गधा के विवरणकों को इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल सांइस में प्रकाशित किया जा चुका है।

## नई पंजीकृत नस्लें

नस्ल पंजीकरण समिति द्वारा पशुधन प्रजातियों की पंद्रह नई नस्लों के पंजीकरण की मंजूरी दी गई हैं जिसमें गोवंश की सात नस्लें, भैसों की तीन नस्लें, बकरी की दो नस्लें, सुअर की दो नस्लें और गधे की एक नस्ल शामिल है। संस्थान द्वारा पहली बाद स्वेदशी सुअर और गधे की नस्लें दर्ज की गई हैं। इन नई नस्लों की एन. बी. ए. जी. आर., अन्य आई. सी. ए. आर. संस्थानों, राज्य विश्वविद्यालयों, राज्य विभागों और देश में उनके संबंधित प्रजनन इलाकों में गैरसंरकारी संगठनों द्वारा व्यापक सर्वेक्षण के माध्यम से पहचान की गई।

## गोवंश

**मोटू:** यह ओडिशा के मलकानगिरी जिले के दक्षिणी भाग में और छत्तीसगढ़ और आंध्रप्रदेश के आसपास के क्षेत्र में पाली जाने वाली छोटे आकार का मजबूत किस्म का गोवंश है। ये पशु ज्यादातर भूरे रंग के होते हैं। पहाड़ी और इस क्षेत्र के लहरदार इलाकों में भार वाहन शक्ति के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

**घुमुसरी:** यह छोटे आकार का भार वाहन प्रकार का पशु है जो ओडिशा के गंजम जिले के पश्चिमी भाग और फुलबनी जिले के आसपास के क्षेत्रों में पाया जाता है। कोट रंग मुख्य रूप से सफेद व कभी कभी भूरा होता है। बैल तेजी के लिए जाने जाते हैं।

**बिन्झारपुरी:** यह मध्यम काठी का मजबूत और दोहरी प्रकार का पशु है तथा दूध और भार वहन दोनों के लिए  पाला जाता है। ये ओडिशा के पूरे जाजपुर जिले तथा केंद्रपाड़ा और भद्रक जिलों के आसपास के क्षेत्रों में पाए जाते है। रंग आमतौर पर सफेद होता है, कूबड़, गर्दन और चेहरे व पीठ के कुछ क्षेत्र रंग में काले होते हैं, चाहे नर का कोट रंग कोई हो।

**खेरिआर:** यह ओडिशा के नुआपाड़ा जिले और कालाहांडी और बलांगीर जिलों के आसपास के क्षेत्र में ज्यादातर भार वहन उद्देश्य के लिए पाले जाते हैं। ये छोटे आकार का जानवर है। पहाड़ी और लहरदार क्षेत्र में खेरिहार बैल ड्राफ्ट भार वहन शक्ति के प्रमुख स्रोत के रूप में सेवा करते है। कोट रंग मुख्य रूप से कत्थई, कभी कभी भूरा होता है। कूबड़, गर्दन और चेहरे व पीठ के कुछ क्षेत्र गहरे रंग के होते हैं।

**कोसली:** यह छोटे आकार की भारवाहन उद्देश्य वाली छत्तीसगढ़ की गोवंश नस्ल है। किसानों द्वारा धान के खेत की सफाई के लिए इस नस्ल के बैल पसंद किये जाते हैं। पशु बहुत ही कुशल काम करने की क्षमता और उच्च रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए जाने जाते है।

**पुलिकुल्लम:** पुलिकुल्लम गायों को तमिलनाडू के मदुरै और आसपास के क्षेत्र में बड़े प्रवासी झुंडों में रखा जाता है। इसकी उपयोगिता भारवाहन और खाद है। इस नस्ल की स्थानीय क्षेत्र में बैल की सवारी (जल्लीकाटू) वाले खेत में उपयोग किया जाता है। गर्म और आर्द्र मौसम के तहत संकर गायों की तुलना में यह नस्ल संचारी और परजीवी रोगों के लिए अधिक प्रतिरोधी है।

**मलनाड गिद्दा:** यह कर्नाटक के पश्चिमी घाट से एक छोटी काठी की गोवंश नस्ल है। यह नस्ल दूध और खाद के उद्देश्य के लिए पाली जाती है। पशु उत्कृष्ट धीरज शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता वाला होता है।

## भैंस

**बन्नी:** बन्नी भैंसे गुजरात के कच्छ क्षेत्र में पाई जाती हैं। ये स्थानीय जलवायु परिस्थितियों और बन्नी चरागाह में रात चराई के पारंपरिक व्यवस्था के लिए अनुकूलित है। बन्नी क्षेत्र के मालधारी इन भैंसों के विकास के लिए जिम्मेदार हैं। भैंसों का रंग मुख्य रूप से काला है। कभी कभी तामियां रंग भी पाया जाता है। सींग ऊपर की ओर ऊर्ध्वाधर एक या दो घुमाव के साथ होते हैं।

**चिलिका:** ये भैंसे कसे हुए शरीर के साथ मध्यम आकार वाली होती है। रंग काला या भूरा होता है। इन भैंसो का पर्यावास ओडिशा में चिलिका झील के आसपास के क्षेत्रों (भसुंदापुर, तंगी, परिकुदा, मलुदा, कृष्णप्रसाद, ब्रह्मगिरी और सतापदा) में है। भैंसे चिलिका झील के नमकीन पानी में डूबे हुए जंगली दानें और जलीय वनस्पति को खाते है। इन भैंसों का दूध और दही बेहतर स्वाद और संरक्षण गुणवत्ता वाला होता है। चिलिका भैंस के दूध से दही कमरे के तापमान पर 5 से 7 दिनों के लिए संरक्षित किया जा सकता है।

**कालाहांडी**–कालाहांडी भैस ओडिशा के कालाहांडी और रायगड़ा जिलों में दोहरी उपयोगिता हेतु दूध और भारवाही प्रयोजन के लिए इस्तेमाल की जाती है। पशु मध्यम आकार के, लंबे, मजबूत और गर्मी और सूखे सहिष्णुता में बहुत ही अच्छे होते हैं।

## बकरी

**कोंकण कन्याल :** कोंकण कन्याल बकरी मांस वाली नस्ल है, जो महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र के उच्च वर्षा और गर्म और आर्द्र जलवायु के लिए अनुकूलित है। पशु के काले चेहरे पर ठेठ सफेद बैंड होता है जबकि काले कानों के किनारे सफेद होते हैं।

**बेरारी :** बेरारी बकरी महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में मांस के प्रयोजन के लिए मुख्य रूप से पाली जाती है। एक अनूठी विशेषता के रूप में जानवरों में सींग के आधार से चेहरे पर नाक के दोनों पार्श्व पक्षों पर काली पट्टियाँ होती हैं।

## सूअर

**घुंघरू :** घुंघरू सुअर पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग और पास के तराई क्षेत्र में मांस और खाद उद्देश्य के लिए पाले जाते है। ये काले रंग के होते है। थूथन ऊपर की ओर उठा हुआ और कान बड़े दिल के आकार का व घुमावदार होता है।

**नियांग मेघा :** नियांग मेघा को गारो, खासी और जयंतिया पहाडियों में मांस और बाल के उद्देश्य के लिए पाला जाता है। नस्ल जंगली प्रकार की दिखती है तथा पीठ पर बीच रेखा में खड़े बाल होते है। कान छोटे व सीधे खड़े होते है।

## गधा

**स्पीति :** स्पीति गधा हिमाचल प्रदेश के लाहौल और स्पीति क्षेत्र में पाया जाता है। जानवरों को ऊँचे क्षेत्रों (लगभग 3500m MSL के ऊपर) में पर्यावरणीय ऑक्सीजन के कम स्तर के साथ परिवहन के लिए उपयोग किया जाता है। कठोर सर्दियों के महीनों के दौरान जब क्षेत्र पूरी तरह से बर्फ बाध्य होता है, चारे की कमी में भी इन जानवरों को अच्छी प्रकार से जीवित रखा जा सकता है।

पशुओं को एक नस्ल के रूप में वर्गीकृत करना उन पशुओं को पहचान देने के समान है। पशु नस्ल पंजीकरण न केवल नस्ल के विकास के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है, अपितु पशुपालकों के हितों को भी सुरक्षित रखने में सहायक होता है। इससे पशु नस्ल के संरक्षण हेतु उचित कदम भी समय रहते उठाये जा सकते हैं। इसके द्वारा नस्ल में निहित विशेष गुणों के महत्व को समझते हुए उनका आगे आने वाले समय में भी सदुपयोग किया जा सकता है। यही विशेष गुण नस्ल को विश्व स्तर पर पहचान देते हैं व बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं। देश की अमूल्य पशुधन सम्पदा का नस्लों के अंन्तर्गत पंजीकरण अत्यन्त आवश्यक है। हमारा यह कर्त्तव्य है कि विभिन्न पशु समुदायों को जोकि नस्ल के मानकों पर खरे उतरते हो जल्द से जल्द नस्ल के रूप में पंजीकृत करवाएं।

☆☆☆☆☆

# पशुधन प्रकाश 2014 में प्रकाशन हेतु लेख आमंत्रण

**राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो** द्वारा **'पशुधन प्रकाश'** पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। पशु विज्ञान एवम् पशु चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत लेखकों से अनुरोध है कि इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु पशु पालकों, शोधकर्त्ताओं एवम् छात्रों के लिए उपयोगी लेख **राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो** के राजभाषा एकक को ए–4 साईज के पन्नों पर टंकित कराकर **31 मार्च, 2014** तक भेज दें। लेख में यदि छायाचित्र हैं, तब उनकी **'जे.पी.ई.जी.'** फाईल लेख के साथ सी.डी. में अवश्य भेजें। लेख ई–मेल द्वारा pashudhanprakash@gmail.com पते पर भी भेजे जा सकते हैं।

आपके द्वारा अध्ययन किये गये पालतू पशु/पक्षियों के गैर पंजीकृत समूहों पर आधारित लेखों को हम प्राथमिकता देते हैं।

–सम्पादक मंडल

# श्रेष्ठ लेखों को पुरस्कार

"पशुधन प्रकाश" पत्रिका में प्रकाशित तीन सर्वश्रेष्ठ लेखों को राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ लेखों का चयन तीन अलग निर्णायकों द्वारा प्रदत्त अंकों के आधार पर किया जाता है।

**पशुधन प्रकाश "तृतीय अंक (2012)" के पुरस्कृत लेख**

**प्रथमः** **उभरता हुआ कुक्कुट उद्यमः एमू पालन**

नवनीत कौर, एस पी एस सोमवंशी एवं दीपक शर्मा

**गुनिया फाउलः किसानों की आय का वैकल्पिक स्रोत**

बृजेश सिंह, एस के सिंह एवं अनिल कुमार

**द्वितीयः** **बदलते वैश्विक परिवेश में भारतीय पशुधन संपदाः एक अवलोकन**

मनीषी मुकेश, मोनिका सोढी, अमित किशोर, प्रवेश मुंजाल एवं बी के जोशी

**तृतीयः** **प्रजनन हेतु दुधारू पशुओं की पोषण व्यवस्था**

अरूण कुमार सिंह, उमेश सिंह, सुशील कुमार एवं राजेन्द्र प्रसाद

–सम्पादक मंडल

# एन.बी.ए.जी.आर.
## गीत

एन.बी.ए.जी.आर. -एन.बी.ए.जी.आर.
देता है ज़्यादा हमको, कम खाकर करे गुज़ारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर. का यही मिशन है, फूले-फले पशुधन का संसार।

सुन्दर नस्लें हैं अपने इन, सभी पालतू पशुओं की। गुण की ये हैं खान, यहाँ है सब कुछ इनका उपयोगी।।
लाखों-लाख गरीबों के, जीने का खास सहारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर. ............................................

भांति-भांति के पशुओं का, भरपूर खज़ाना हम पे है। भारत के गाँवों की सचमुच, सुख-समृद्धि इनसे है।।
कुदरत ने उपहार दिया है, हमको बेहद प्यारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर...........................................

इस अनमोल सम्पदा को, मिलजुल के हमें बचाना है। चुन-चुन कर उत्तम नस्लों को, आगे और बढ़ाना है।।
राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक, संसाधन ब्यूरो का नारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर..........................................

एन.बी.ए.जी.आर. प्रथम तो, नस्लों की पहचान करे। वैज्ञानिक तकनीकों के द्वारा, फिर उनका उत्थान करे।।
एन.बी.ए.जी.आर. है सच्चा, इनका पालनहारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर. ...............................................

# राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

*भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्*

जी.टी. रोड (बाई-पास), बसंत विहार के नजदीक,
पोस्ट बॉक्स नं. 129, करनाल - 132 001 (हरियाणा) भारत
दूरभाष : 0184-2267918, फैक्स : 0184-2267654
ईमेल : directornbagr@gmail.com
http://www.nbagr.res.in